गार्गी पुस्तिका चार

क्या पूँजीवाद एक बीमारी है?

अमरीकी सार्वनिक स्वास्थ्य-व्यवस्था का संकट

रिचर्ड लेविन्स

गार्गी प्रकाशन

कुछ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के हाल के अंकों में प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण लेखों को हमने पुस्तिकाओं की एक शृंखला के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। अलग-अलग विषयों पर केन्द्रित इन लेखों में एकमात्र समानता यह है कि ये कुछ अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में सोचने के लिए हमें न केवल विवश करते हैं, बल्कि उसके लिए जरूरी विचारधारात्मक ढाँचा भी मुहैया कराते हैं। इन्हें पुनर्प्रकाशित करने का हमारा उद्देश पाठकों के अपेक्षाकृत एक बड़े दायरे तक उन्हे पहुँचाना हैं, जिनमें वे पाठक भी शामिल हैं, जो सम्बन्धित पत्रिका के पाठक समूह में शामिल न होने के चलते इससे वंचित रह गये होंगे।

रिचर्ड लेविन्स हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जीवविज्ञान के प्रोफेसर हैं। महामारी-विज्ञान के क्षेत्र में कई वर्षों के काम के बदौलत उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। प्रस्तुत लेख न्यूयार्क स्थित 'ब्रेख्त फोरम' में लेखक द्वारा दिये गये भाषण पर आधारित है, जिसे न्यूयार्क से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'मन्थली रिव्यू' ने सितम्बर 2000 में प्रकाशित किया था। उसी लेख को हम हिन्दी में अविकल रूप से अनूदित कर रहे हैं।

इस पुस्तिका के बारे में आपके विचार और सुझाव जानकर हम अनुगृहीत होंगे।

गार्गी प्रकाशन

''पश्चिम'' यानी यूरोप और उत्तरी अमरीका की वैज्ञानिक परम्परा ने सबसे बड़ी सफलता तब पायी, जब उसने वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल के केन्द्रीय प्रश्नों-- ''यह किससे बना है?'' और ''यह कैसे काम करता है?'' के सम्बन्ध में विचार किया। सदियों के प्रयासों से हमने इन प्रश्नों के उत्तर देने के ज्यादा से ज्यादा बेहतर तरीके विकसित कर लिये हैं। हम चीजों को चीरकर खोल सकते हैं, उन्हें महीन परतों में काट कर और विशिष्ट रसायनों द्वारा रंग कर स्लाइड बना सकते हैं, ताकि उनकी आन्तरिक संरचना के बारे में जान सकें। इन अपेक्षतया सरल क्षेत्रों में तो हमने महान उपलब्धियाँ हासिल कर ली हैं, लेकिन अधिक जटिल तन्त्रों को समझने के प्रयास में हमें जबरदस्त असफलताएँ हाथ लगी हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह समस्या खासतौर पर हमारे सामने आयी है। पिछली लगभग एक सदी के दौरान स्वाथ्य के क्षेत्र में आये बदलावों पर नजर डालें, तो जहाँ एक ओर खुश होने के कारण हैं वही, दूसरी ओर निराश होने के कारण भी मौजूद हैं। बीसवी सदी की शुरुआत से लेकर अब तक मनुष्य की औसत आयु में लगभग तीस साल की बढ़ोत्तरी हुई है और पुराने समय से चली आ रही कई घातक बीमारियों का प्रकोप बहुत कम हुआ है और उनका लगभग उन्मूलन हो गया है। चेचक का लगभग उन्मूलन कर दिया गया है, कोढ़ की बीमारी अब काफी कम हो गयी है और पोलियो दुनिया के अधिकांश हिस्सों से लगभग समाप्त हो चुका है। वैज्ञानिक तकनीक इतनी उन्नत हो चुकी है कि आज हम एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते रोगाणुओं में फर्क करके रोगों के बहुत परिष्कृत निदान कर सकते हैं।

लेकिन अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई के चलते दुनिया की अधिकांश जनता इन ढेर सारी उन्नत तकनीकों का कोई लाभ नहीं उठा पाती। कुछ नयी बीमारियों के पैदा होने तथा जिन बीमारियों के उन्मूलन का दावा किया गया था, उनके दुबारा प्रकट होने पर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्राधिकरण अचम्भें में पड़ गये हैं। 1970 के दशक में आमतौर पर यह सुनने में आता था कि अब संक्रामक बीमारियों पर शोध की जरूरत खत्म होती जा रही है। सिद्धान्ततः संक्रामक रोगों से निपटा जा चुका था; यह माना जा रहा था कि भविष्य की स्वास्थ्य-समस्यायें केवल क्षयकारी बीमारियों (डिजनरेटिव डिजीज), बुढ़ापे की समस्याओं तथा दीर्घकालिक (क्रॉनिक) बीमारियों से ही सम्बन्धित होंगी। लेकिन आज हम समझ सकते हैं कि यह सोच कितनी गलत थी। सार्वजिनक स्वास्थ्य-व्यवस्था के दावे न केवल मलेरिया, हैजा, टी.बी. और डेंगू और अन्य पुरानी बीमारियों के दुबारा लौट आने के चलते

गलत साबित हो गये, बल्कि नयी प्रतीत होनेवाली संक्रामक बीमारियों के प्रकट होने से भी यह अचरज में पड़ गयी। इनमें सबसे खतरनाक है एड्स। इसके अलावा लीजनेयर रोग, एबोला विषाणु, टॉक्सिक शॉक सिण्ड ्रोम, टी.बी. की कई किस्में, जिन पर दवाओं का असर नहीं होता (मल्टिपुल ड्रग रेजिस्टेण्ट ट्यूबरकुलोसाई) और बहुत सी अन्य बीमारियाँ भी इनमें शामिल हैं। संक्रामक बीमारियों का खत्म होना तो दूर, पुरानी बीमारियाँ और अधिक घातक होकर लौट आयीं हैं तथा कुछ एकदम नयी बीमारियाँ भी पैदा हो गयीं हैं।

यह सब कैसे हुआ? सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की विफलता का कारण क्या है? स्वास्थ्य सम्बन्धी पेशों में लोगों ने यह क्यों मान लिया कि संक्रामक बीमारियाँ लुप्त हो जायेंगी और वे क्यों इस कदर गलत साबित हुए? हुआ यह कि पिछले 150 सालों से यूरोप और उत्तरी अमरीका में सक्रामक बीमारियाँ आश्चर्यजनक ढंग से कम होती जा रही थी। इससे सहज ही यह अन्दाजा लगाया जा सकता था कि मामला वैसे ही चलता रहेगा जैसे अभी चल रहा है। उस वक्त स्वास्थ्य के पेशे से जुड़े लोग दलील देते थे कि संक्रामक बीमारियाँ इसलिए लुप्त हो जायेंगी कि उनसे निपटने के लिए हम सभी तरह की नयी तकनीकों का ईजाद करते जा रहे हैं। अब हम इतनी तेजी से रोग की पहचान कर सकते हैं कि जो बीमारियाँ आदमी को दो दिन में मार सकती हैं, उन्हें प्रयोगशाला में त्वरित जाँच द्वारा पहचान कर तुरन्त उनका उपचार किया जा सकता है। बैक्टीरिया को सम्वर्धित (कल्चर) करने में हफ्तों लगाने के बजाय हम डी.एन. ए. के जरिये आपस में काफी मिलते-जुलते लक्षण वाले जीवाणुओं के बीच फर्क कर सकते हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि हमने नये रोगाणुरोधी हथियारों– दवाओं और टीकों के साथ-साथ बीमारी फैलाने वाले मच्छरों और अन्य कीड़े-मकोड़ों का नाश करने के लिए कीटनाशकों का एक नया शस्त्रागार विकसित कर लिया है। हम यह जान गये हैं कि उत्परिर्वतन (म्यूटेशन) और प्राकृतिक चयन के जरिये प्रतिरोध क्षमता विकसित करके सूक्ष्म जीव हमारे लिये लगातार खतरा पैदा कर सकते हैं। हमने यह मान लिया था कि सूक्ष्म जीवों के भीतर चाहे जो भी परिवर्तन हो जायें, लेकिन बीमारी पैदा करने वाली उनकी क्रिया-विधि वही रहेगी, जबकि हम उनके खिलाफ हमेशा नये-नये हथियार विकसित करते रहेंगे। हमें यकीन था कि हमारे और रोगाणुओं के बीच युद्ध में हमारा पलड़ा भारी है, क्योंकि हमारे हथियार पहले से ज्यादा ताकतवर, ज्यादा प्रभावी होते जा रहे हैं। हमारे आशावादी होने का दूसरा कारण यह था (कम से कम मुद्राकोष और विश्व बैंक तो यह दलील दे ही रहे थे) कि आर्थिक विकास गरीबी मिटा देगा और समृद्धि लायेगा, जिससे सभी नयी तकनीकें सर्व-सुलभ हो जायेंगी। कुल मिलाकर जनसंख्या विशेषज्ञों का मानना था कि चूँकि संक्रामक बीमारियाँ बच्चों के लिए ही सर्वाधिक घातक होती है और कुल जनसंख्या में बच्चों का अनुपात कम है,

इसलिए इन बीमारियों की सम्भावना वाले लोगों का अनुपात अपेक्षतया कम होगा। इस परिकल्पना से एक चीज गायब थी कि बच्चों के अधिक रोग-ग्रस्त होने का कारण उनके भीतर प्रतिरोधक क्षमता का समुचित विकास न होना होता है। बच्चों की रोग-प्रतिरोधक क्षमता उनके परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन के साथ बढ़ती जाती है। ठीक यही वजह है कि वयस्क परिस्थितियों के अधिक अनुकूलित होने के कारण कम रोग-ग्रस्त होते हैं। लेकिन, यदि जनसंख्या में बच्चे कम हो, तो वयस्कों में प्रतिरोधक क्षमता का स्तर कम हो जायेगा और उन्हें बड़ी उम्र में भी बीमारियाँ पकड़ सकती हैं। दरअसल, कुछ बीमारियाँ जैसे गलसुआ (मम्प्स), बच्चों की तुलना में वयस्कों के लिए ज्यादा खतरनाक होती हैं।

तो फिर हमारे महामारी सम्बन्धी पूर्वानुमानों में क्या गड़बड़ी थी? हमारे लिए यह मान लेना जरूरी है कि चिकित्सा और सम्बन्धित विज्ञानों में ऐतिहासिक समझ विचारधारात्मक तौर पर खतरनाक रूप से संकीर्ण थी। सार्वजनिक स्वास्थ्य के बारे में पूर्वानुमान लगाने वाले लगभग सभी लोगों ने देश-काल के सन्दर्भ में बहुत संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया। खास बात यह थी कि उन्होंने समग्र मानव-इतिहास की जगह केवल एक या दो शताब्दियों के बारे में ही विचार किया।

यूरोप में प्लेग

छठी शताब्दी में, जब जुस्तिनियन के शासनकाल में रोमन साम्राज्य का पतन हो रहा था, उसी दौरान यूरोप में पहली बार प्लेग फैला। यूरोप उस समय सामाजिक उथल-पुथल और उत्पादन में गिरावट का शिकार था। प्राचीन महानगरों की सफाई-व्यवस्था चरमरा गयी थी। ऐसे हालात में, जब प्लेग का हमला हुआ, तो उसने भारी तबाही मचाते हुए एक बड़ी आबादी का सफाया कर दिया। चौदहवी सदी में प्लेग उस समय प्रकट हुआ, जब सामन्तवादी व्यवस्था का संकट बढ़ता जा रहा था, जिसके चलते प्लेग के व्यापक रूप से फैलने के पहले ही जनसंख्या का संकट बढ़ता जा रहा था। जिसके चलते प्लेग के व्यापक रूप से फैलने के पहले ही जनसंख्या में गिरावट आ गयी थी। प्लेग के इस हमले का इतिहास यह बताता है कि 1338 में काले सागर के बन्दरगाहों में आने वाले जहाजी एशिया से अपने साथ प्लेग लेकर आये थे। फिर यह पश्चिम की ओर फैला और थोड़े समय में ही रोग, पेरिस और लन्दन तक जा पहुँचा। दूसरे शब्दों में, प्लेग इसलिए फैला क्योंकि लोग उसे बाहर से लेकर आये थे। लेकिन ज्यादा सम्भावना इस बात की है कि प्लेग ने पहले भी कई बार यूरोप में प्रवेश किया हो, मगर उसका वास्तविक प्रकोप नहीं हो पाया हो। लेकिन जब आबादी रोगों के आगे असहाय हो गयी और जब मानव-परिस्थितिकी चूहों द्वारा फैलायी जा रही इस बीमारी का मुकाबला नहीं कर पायी, क्योंकि चूहों को नियन्त्रित करने वाला सामाजिक ढाँचा चरमरा गया, तभी जाकर वहाँ इस बीमारी का प्रकोप हुआ।

परिस्थिति विज्ञान सम्बन्धी एक प्रस्ताव

अन्य बीमारियों पर ध्यान देने पर भी हम देखते हैं कि ऐतिहासिक परिवर्तनों और परिस्थितियों के अनुसार उनमें उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। इसलिए महामारी से सम्बन्धित संक्रमण-सिद्धान्त, जो यह मानता है कि देशों के विकसित होने के साथ ही संक्रामक बीमारियों का लोप हो जायेगा, की जगह हमें एक परिस्थिति विज्ञान सम्बन्धी प्रस्ताव लाने की जरूरत है-- किसी आबादी के जीवन-यापन के तौर-तरीकों (जैसे जनसंख्या घनत्व, घरों की बनावट, उत्पादन के साधन) में जब भी कोई बड़ा परिवर्तन आयेगा, तो वह रोगाणुओं, उनके भण्डारों और बीमारियों के वाहकों के साथ हमारे सम्बन्धों में भी बदलाव लायेगा। दक्षिण अफ्रीका, अमरीका और दुनिया के अन्य हिस्सों में प्रकट हो रहे लगभग सभी तरह के नये रक्तस्त्रावी बुखार उन चुहे जैसे जानवरो के साथ मनुष्य के बढ़ते सन्सर्ग का परिणाम प्रतीत होते है, जिनसे मनुष्य का पहले कोई हेल-मेल नहीं था, लकिन खासकर अनाज पैदा करने के लिए जंगलों को साफ करते जाने के कारण यह सन्सर्ग बढ़ गया। कुतर कर खाने वाले ये जीव बीजों और घास को खा कर अपना गुजारा करते हैं। अनाज भी इनका भोजन है। जब हम किसी जंगल को काटकर वहाँ अनाज की खेती करने लगते हैं, तो साथ ही हम भेड़ियों, बघेरों, साँपों और उल्लुओं का भी सफाया कर देते हैं, जो इन कुतरने वाले जीवों को खाते हैं। इसका कुल नतीजा यह होता है कि कुतरने वाले जीवों को प्रचुर मात्रा में भोजन मिलने लगता है और उनकी मृत्यदर कम हो जाती है। इस तरह, उनकी आबादी बढ़ने लगती है। बीमारी फैलाने वाले ये जीव--अब सामाजिक प्राणी हो जाते हैं। वे घर बनाते हैं और समुदाय में रहते हैं--जब उनकी नयी पीढ़ी पैदा होती है, तो युवा-पीढ़ी नये घरों की तलाश में दूसरे स्थानों की ओर निकल पड़ती है, जो अकसर लोगों के घरों और गोदामों में घुमती रहती है, जिससे बीमारियों का प्रसार सुगम हो जाता हैं।

एक अन्य इन्सानी क्रिया-कलाप-- सिंचाई का घोंघों के प्रजनन से खासतौर से सम्बन्ध है, जो लीवर फ्लूक को फैलाते हैं। सिंचाई से मलेरिया, डेंगू और पीला बुखार फैलाने वाले मच्छर भी पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए, मिस्र में आसवन बाँध बनाने के बाद, जब बड़े पैमाने पर सिंचाई होने लगी, तो वहाँ मच्छरों के प्राकृतिक वास-स्थान पैदा हो गये। पहले मिस्र में यदा-कदा फैलने वाला रिफ्ट वैली बुखार अब वहाँ किसी भी समय पाया जा सकता है। तीसरी दुनिया में विशालकाय शहरों के विकास ने पीला बुखार फैलाने वाले मच्छरों से होने वाले डेंगू के प्रसार के लिए नया वातावरण तैयार किया है। इस मच्छर ने अपने आप को महानगरों के बाहरी इलाकों के जीवन के अनुरूप ढाल लिया है। ये मच्छर जंगलों में रहने वाले मच्छरों की अन्य प्रजातियों की तुलना में कमजोर प्रतियोगी होने के बावजूद कीचड़, पानी के पीपों और पुराने ट्रायरों में प्रचुरता में प्रजनन करने की क्षमता रखते

हैं--एक खास वातावरण में, जों हमने ऊष्ण कटिबन्धी विशालकाय शहरों में तैयार किया हैं। ऊष्ण कटिबन्धी इलाकों में बढ़ते शहरीकरण के कारण विकसित हुए बैंकॉक, रियो डि जिनेरो, मेक्सिको सिटी और ऐसे ही दूसरे एक-दो करोड़ आबादी वाले शहरों में डेंगू और पीला बुखार फैलने का विशेष खतरा है। जैसे-जैसे मानव आबादी बढ़ती जाती है, बीमारियों को फैलने के नये मौके मिलते हैं। उदाहरण के लिए, खसरा कायम रह सके, इसके लिए कुछ लाख की आबादी चाहिए। यदि आबादी कम हो तो खसरा पूरी आबादी में फैल जायेगा और जो लोग ठीक हो जायेंगे, उनमें खसरे की प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जायेगी। लेकन अगर बीमारी को कायम रखने वाले नये बच्चे पर्याप्त संख्या में नहीं है, तो यह बीमारी गायब हो जायेगी और फिर तभी फैलगी, जब दोबारा कहीं से कोई इसे लाये। लेकिन ढाई लाख की आबादी में पर्याप्त संख्या में ऐसे बच्चे होंगे, जिनमें प्रतिरोध क्षमता नहीं होगी और बीमारी खुद को इस आबादी में कायम रख सकती है। अब सोचिये -- यदि हम जानते हैं कि कुछ ऐसी बीमारियाँ हैं, जिन्हें खुद को कायम रखने के लिए ढाई लाख लोगों की जरूरत है, तो एक या दो करोड़ की घनी आबादी में कितनी बीमारियाँ पैदा हो सकती है! स्पष्ट है कि जैसे-जैसे जीवन की परिस्थितियाँ बदलती हैं, वैसे-वैसे बीमारियों को भी फैलने का मौका मिलता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य बिरादरी के भीतर एक और भी तरह का अदूरदर्शी चिन्तन इस बात से पैदा हुआ है कि डॉक्टरों को केवल मनुष्यों की बीमारियों से ही लेना-देना होता है। वे जंगली जानवरों, पालतू-पशुओं या पेड़-पौधों में होने वाली बीमारियों की ओर कोई खास ध्यान नहीं देते। अगर वे ऐसा करते, तो उन्हें इस सच्चाई से दो-चार होना पड़ता कि सभी जीवधारी बीमारियों के वाहक होते हैं। जब किसी जीवधारी पर कोई परजीवी धावा बोलता है, तब बीमारियाँ होती हैं। जब कोई संक्रमण होता है, तो उसके लक्षण प्रकट हो भी सकते हैं और नहीं भी। लेकिन सभी जीवधारियों को परजीवियों से वास्ता पड़ता है और यदि परजीवियों के दृष्टिकोण से देखे, तो किसी जीवधारी पर उनका धावा बोलना, पानी में और जमीन पर उन्हें जिन्दा रहने के लिए जो प्रतियोगिता करनी पड़ती है, उससे भागने का एक रास्ता है। उदाहरण के लिए, लीजनेयर बीमारी पैदा करने वाला बैक्टिरिया पानी में रहता है। यह पूरी दूनिया में पाया जाता है, परन्तु बहुत ज्यादा प्रचलित नहीं है, क्योंकि यह एक कमजोर प्रतियोगी है। जिन्दा रहने के लिए इसे अतिविशिष्ट भोजन की जरूरत होती है। इसीलिए आमतौर पर मनुष्य को इसका सामना नहीं करना पड़ता। फिर भी, दो बातें इसके अनुकूल हैं-- एक तो यह ऊँचा तापमान बर्दाश्त कर लेता है और दूसरे, इसमें क्लोरीन से बचने की क्षमता है। यह अमीबा में घुसकर क्लोरीन से बचाव कर लेता है। सभा-स्थलों, होटलों या ट्रकों के अड्डों पर पाया जाने वाला पानी गर्म होता है और उसमें क्लोरीन भी मिला होता है। यदि होटल अच्छा हुआ, तो वहाँ हमें एक फव्वारा भी मिलेगा,

जो छोटी-छोटी बूँदों की अच्छी बारिश करता है। ये बूँदें आपके फेफड़ों के दूरस्थ कोनों में भी बैक्टीरिया को बेरोक-टोक पहुँचा देती हैं। हमने खुद ही लीजनेयर बीमारी के प्रसार के लिए आदर्श परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं? क्लोरीन और उच्च तापमान उसके प्रतियोगियों को मार देते हैं। पाइपलाइनों के भीतर उन मरे हुए जीवों के अवशेषों की एक परत जमा हो जाती है, जिससे लीजनेयर बैक्टीरिया को अपने प्रिय भोजन की अच्छी और भरपूर खुराक मिल जाती है। यदि हम दूसरे जीवों को देखें, तो हमें परजीवियों और परपोषियों के बीच अपने-अपने वर्चस्व के लिए निरन्तर एक छल-कपट चलता दिखायी देता है। कोई प्रजाति जितनी ज्यादा प्रचलित होती है, वह परजीवियों के नये हमलों के लिए उतनी ही ज्यादा आकर्षक होती है। चूँकि मनुष्य सभी जगह पाया जाता है, इसलिए वह परजीवियों को आसानी से हमले का मौका देता है। जब हम बीमारी फैलने के पैटर्न को देखते हैं, तो पाते हैं कि हैजा पूर्वी गोलार्द्ध से फैलना शुरू करके अमरीका में प्रवेश करता है और वहाँ से पेरू होते हुए मध्य अमरीका तक की यात्रा करता है। लेकिन सन्तरे के पेड़ की एक बीमारी, टमाटर और बीन्स में लगनेवाले विषाणु और इसके अलावा वन्य जीवों की बीमारीयाँ भी एकदम इसी मार्ग का अनुसरण करती हैं। इस तरह हम देखते है कि सभी जानवरों और पौधों में, रोगाणुओं और परपोषकों के बीच एक सतत सहविकास (को-इवोल्यूशन) दिखायी देता है। यह केवल मनुष्यों में पायी जाने वाली अनोखी बात नहीं है। निश्चित रूप से, यदि हम इसी परिप्रेक्ष्य में मनुष्यों में होने वाली बीमारियों को समझने की कोशिश करें, तो हम उनके सम्भावित खतरों की एक बेहतर समझदारी हासिल कर सकते हैं।

बीमारियों का प्रसार

किस तरह के कीट विषाणुओं को लोगों के बीच फैलाते हैं? उनमें से लगभग सभी या तो मच्छर हैं या मक्खियाँ या वे कीटों के एक अन्य वर्ग से ताल्लुक रखते हैं, जिनमें पिस्सू, चींचड़ी और जुएँ आते हैं। हालाँकि जबर्दस्त तरीके से मनुष्यों में बीमारी के विषाणुओं को फैलाने वाले यही दो मुख्य वर्ग हैं, लेकिन इनके अलावा लाखों अन्य प्रकार के कीड़े भी बीमारी फैलाते हैं। भौंरें बहुत कम बीमारियाँ फैलाते हैं। मैं जितनी बीमारियों को जानता हूँ उनमें से कोई भी तितलियों और ड्रेगन फ्लाई द्वारा नहीं फैलायी जाती। ऐसा क्यों? क्या ऐसी भी कोई परिस्थिति है, जिसमें ये बीमारियों के प्रसारक हो सकते हैं? पैधों में लगने वाले विषाणुओं के प्रमुख वितरक कीटों के एक सर्वथा भिन्न समुदाय से सम्बन्धित हैं, जिसका नाम है माहूँ (एफिड्स)। हालाँकि दोनों समूहों के मुँह की बनावट एक जैसी होती है और वे परपोषक के शरीर से रस चूसकर ही अपना गुजारा करते हैं-- मच्छर खून चूसकर, तो माहूँ पौधों का रस चूसकर। यदि आपने किसी नलिका से कभी

कोई चीज चूसी है तो आपको अनुभव होगा कि कुछ देर बाद नलिका में निर्वात पैदा हो जाता है। रस का चूसते रहने के लिए थोड़ा सा रस नलिका से वापस लौटाना जरूरी हो जाता है। उसी तरह खून या रस चूसते समय मच्छर और माहूँ अपने लार को मेजबान के शरीर में छोड़ते हैं। विषाणु इसी लार में होते हैं। यही कारण है कि जब हम विषाणुओं का अध्ययन करते हैं तो हम मच्छर, चीचड़ी या अन्य परजीवियों की लार-ग्रन्थियों को भी ध्यान से देखते हैं। इस तरह के सामान्यीकरणों से हमारा सामना तभी होता है, जब किसी दी हुई बीमारी के विशिष्ट ब्यौरों का अवलोकन करने के बाद हम पीछे लौटते हैं और उसको व्यापकता में देखने की कोशिश करते हैं। लेकिन ऐसा नहीं किया गया।

जीवों के क्रमिक विकास और समाज के अध्ययन में असफलता

एक अन्य प्रकार की वैज्ञानिक संकीर्णता, वास्तव में ओढ़ी गयी बौद्धिक संकीर्णता, क्रमिक विकास के अध्ययन में असफलता है। क्रमिक विकास हमें यह बताता है कि जीव अपने पर्यावरण की चुनौतियों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि काई एण्टीबायोटिक रोगाणुओं के लिए खतरा है, तो वे उस एण्टीबायेटिक के लिए खुद को अनुकूलित करके इस चुनौती का मुकाबला करते हैं। खेती के क्षेत्र में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कीड़े कीटनाशकरोधी हो जाते हें। इसी तरह चिकित्सा के क्षेत्र में भी ऐसे रोगाणुओं संख्या बढ़ती जा रही है, जो एण्टीबायोटिक दवाओं केप्रयाग से पहले ही प्रतिरोधी हो गये हैं। यह तब होता है, जब कोई एण्टीबायोटिक दवा बाजार में नये व्यावसायिक नाम से आती है लेकिन अपनी पूर्ववर्ती दवा से शायद ही कुछ अलग होती है। ऊपर से भिन्न प्रतीत होने के बावजूद अगर बैक्टीरिया पर असर करने का उसका तरीका वही पुराना हुआ तो बैक्टीरिया भी उसी तरीके से अपना बचाव कर लेता है। बीमारी के वाहक को देखना ही पर्याप्त नहीं है, हमें यह भी देखना होगा कि आबादी को रोग-संवेदी कौन बनाता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य की परम्परागत व्यवस्था विश्व-इतिहास का अध्ययन करने, दूसरे जीवों का अध्ययन करने, क्रमिक विकास और परिस्थितिविज्ञान पर ध्यान देने और अन्ततः समाजविज्ञान का अध्ययन करने में असफल रही है। ऐसे साहित्य की तादाद बढ़ती जा रही है, जो बताते है कि लगभग सभी तरह के स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरों से गरीब और उत्पीड़ित लोग ही अपेक्षतया अधिक ग्रसित होते हैं लेकिन अमरीका में हम अब भी वर्ग-अन्तरविरोधों को सही चिन्हित नहीं करते। हमारे शोधकर्ता आमदनी में असमानता या माताओं के शैक्षणिक स्तर में अन्तर या परिवार के आर्थिक-सामाजिक स्तर में अन्तर की बात भी स्वीकारते हैं परन्तु महामारी-विज्ञान से जुड़े लोग वर्गों के बारे में कोई बात नहीं करते, जबकि जीवन प्रत्याशा, वृद्धावस्था की शक्तिहीनता या बार-बार दिल का दौरा पड़ने का सबसे सही पूर्वानुमान वर्गीय स्थिति के जरिये ही किया जा सकता है। दिल की

बीमारी का पूर्वानुमान करना हो तो, कोलेस्ट्रॉल नापने से कहीं अच्छा है कि सम्बन्धित व्यक्ति की वर्गीय स्थिति का पता लगाया जाये।

अन्य व्याख्याएँ

हमने अपनी आँखों पर बौद्धिकता की ऐसी पट्टी क्यों बाँध रखी है, जिसने हमारे सार्वजनिक स्वास्थ्य के अध्ययन और व्यवहार को छिन्न-भिन्न कर दिया है? इसका पहला कारण है बौद्धिक पक्षपात का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना। उदाहरण के लिए अमरीकी व्यावहारिकतावाद को ही लें। अमरीकियों को अपने व्यावहारिक होने पर गर्व है। ''सिद्धान्त'' उनके लिए अमूमन एक गन्दा शब्द है। जब एक बड़ी आबादी रोग-ग्रस्त हो और बच्चे मर रहे हों, तब इन भारी दबावों के बीच क्रमिक विकास के बारे में बातें करना एक विलासिता है। तात्कालिकता के इन दबावों के चलते भी डॉक्टर टमाटर की बीमारियों पर ध्यान नहीं देते, मच्छरों की अलग-अलग प्रजातियों के बीच प्रतियोगिता की बात नहीं करते और ऐतिहासिक कारकों को निश्चय ही नजरअन्दाज कर देते हैं। इलाज के व्यावहारिक कामों या महामारी सम्बन्धी कामों को तुरन्त अन्जाम देने के फलस्वरूप ही अपरिहार्य रूप से एक संकीर्ण नजरिये का निर्माण हुआ है।

दूसरा कारण है-- लघुकरण (रिडक्शनिज्म) की पश्चिमी वैज्ञानिक परम्परा, जो मानती है कि किसी समस्या को समझने के लिए पहले उसे छोटे-छोटे खण्डों में बाँट लो और फिर एक-एक करके उन्हें हल करो। जब हमारे सामने सिर्फ यही प्रश्न हो कि ''यह किस चीज से बना है?'' तब यह तरीका बहुत कामयाब रहता है। तब हम उस जीव को अलग करके उसका एक अवयव काटकर निकाल सकते हैं, ब्लेण्डर में डाल कर उसका मिश्रण तैयार कर सकते हैं या सूक्ष्मदर्शी द्वारा उसका अवलोकन कर सकते हैं। दरअसल, हम यह पता लगाने में शानदार सफलता अर्जित कर चुके हैं कि वस्तुएँ किस चीज से बनी हैं। यही वजह है कि सभी वैज्ञानिक कार्यों के दौरान छोटी घटनाओं-परिघटनाओं के बारे में हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर परिष्कृत होता गया है, चाहे अतार्किक ही क्यों न हो। आखिर क्या कारण है कि हम अलग-अलग लोगों का आपातकालीन उपचार करने में तो इतना सफल हैं, लेकिन मलेरिया की रोकथाम या उससे बचाव करने, उसकी वापसी का पूर्वानुमान करने या पूरी आबादी की स्वास्थ्य-समस्या को व्यापक तौर पर हल करने में इतने अप्रभावी हैं? हमने गेहूँ की एक अच्छी प्रजाति का विकास करने में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है, जो नाइट्रोजन का बेहतर इस्तेमाल करके ज्यादा फसल देती है, लेकिन गाँवों की भुखमरी कम करने में हम बहुत सफल नहीं रहे हैं।

चार परिकल्पनाएँ

इस तरह हमारी ठेठ असफलता है-- चीजों की जटिलता को समझने से इंकार करना। हमारी सफलताएँ, छोटी चीजों से सम्बन्धित सफलताएँ हैं, जहाँ एकाकी अवयवों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। किसी भी अन्य औद्योगिक देश की तुलना में अमरीका में हम स्वास्थ्य सेवाओं पर ज्यादा खर्च करते हैं, फिर भी हम उनमें सबसे खराब परिणाम वाले देशों में से एक हैं। यदि स्वास्थ्य के प्रचलित सूचकों के हिसाब से देखा जाये तो हम निश्चित तौर पर यूरोप के देशों से पीछे हैं और कई मामलों में तो जापान से भी पीछे हैं। यह एक ऐसी सच्चाई है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े लोगों के लिए चिन्ता का विषय है। वे पूछते हैं कि हम स्वास्थ्य सेवाओं पर इतना ज्यादा खर्च करते हैं, फिर भी दूसरे देशों की तुलना में हमारी उपलब्धियाँ इतनी कम क्यों हैं।

यहाँ हम चार परिकल्पनाएँ दे रहे हैं।

एक-- हमें वास्तव में बेहतर स्वास्थ्य सेवायें नहीं मिलती, भले ही हम इसके लिए अधिक पैसा खर्च करते हैं। हमारी स्वास्थ्य सेवाओं के कुल खर्च का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा प्रशासनिक खर्चों, बिल बनाने, विज्ञापन देने और इसी तरह के अन्य मदों में खर्च होता है। सम्पूर्ण पूँजीवाद के मुनाफे की दर की तुलना में दवा उद्योग में मुनाफे की दर अधिक होती है और इस मुनाफे का बहुत बड़ा हिस्सा अमरीका में ही होता है। डॉक्टरों के वेतन यहाँ बहुत ज्यादा है और अस्पताल के कमरों का किराया भी बहुत महँगा है। नतीजा यह कि प्रति रोगी पूँजी ''निवेश'' भी यहाँ बहुत ज्यादा है।

दो-- यदि हम अधिक स्वास्थ्य सेवा पा भी जायें, तो वह हमेशा अच्छी ही स्वास्थ्य सेवा नहीं होती। यह बात विरोधाभासी प्रतीत होती है, क्योंकि दूसरे अधिकांश देशों की तुलना में हमारे यहाँ ज्यादा एम.आर.आई., सी.टी. स्कैन और डायलिसिस मशीनें हैं। तो फिर, हमारी स्वास्थ्य सेवायें बेहतर क्यों नहीं हैं? डॉक्टरों द्वारा लिये गये निर्णयों के पीछे हमेशा मरीज के इलाज की जरूरतें ही नहीं होती। किस तरह की तकनीक का प्रयोग किया जाये, किस तरह की विधि अपनायी जाये (मसलन, दिल के ऑपरेशन के वक्त) इन सब निर्णयों के पीछे बहुत तरह के प्रलोभन काम करते हैं, जो अलग-अलग देशों में इलाज की प्रक्रिया में फर्क डाल देते हैं। हम यूरोप की तुलना में ज्यादा पेस-मेकर लगाते हैं, अधिक सिजेरियन और हिस्टेरेक्टॉमी करते हैं। अस्पताल के मालिक डॉक्टरों और मरीजों, दोनों को आकर्षित करने के लिए महँगी मशीनें खरीदते हैं। और जब एक बार खरीद ही लिया गया, तो उसका इस्तेमाल भी होगा। आप किसी एम.आर.आई. मशीन को अस्पताल में बेकार पड़े रहने की इजाजत नहीं दे सकते। अस्पताल में हुए निवेश की वसूली के लिए ही सही, डॉक्टरों को इसका इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसी तरह, एक

सर्जन के ''रन बनाने का औसत'' ऊँचा रखने और उसकी दक्षता का स्तर बनाये रखने के लिए उसे हर साल अधिक से अधिक (कुछ सौ प्रति वर्ष) ऑपरेशन करने होते हैं। किसी अलग-थलग पड़े अस्पताल में जाना सुरक्षित नहीं माना जाता, जहाँ पर 3-4 महीने में सिर्फ एक हृदय प्रत्यारोपण का केस आता हो। बुद्धिमान मरीज आधुनिकतम तकनीक से युक्त किसी उच्च ख्याति प्राप्त हृदयरोग अस्पताल की ही तलाश करेगा। लेकिन ऐसा सम्मान हासिल करने लिए अस्पताल को अपनी दक्षता का स्तर कायम रखना जरूरी होता है। ऐसे में डॉक्टरों और मशीनों को सक्रिय बनाये रखने के लिए प्रलोभन देना जरूरी होता है। चूँकि किसी मशीन की सेवा को बरकरार रखना खर्चीला होता है, इसलिए ऑपरेशन की फीस आती रहे, तभी यह चालू रह पायेगी। लेकिन, क्या इतने महँगे उपकरण रखने का कोई औचित्य है? अस्पताल के प्रशासक आपसे कहेंगे कि हाँ है, क्योंकि आगे वाली सड़क पर जो अस्पताल है, उसमें ये उपकरण हैं। अगर मास जनरल अस्पताल को बेथ इजराइल अस्पताल से और इन दोनों को एक तीसरे अस्पताल माउण्ट सिनाई से प्रतियोगिता करनी है, तो इन सभी को उन्नत तकनीक रखनी होगी। इसके बाद आते हैं वे प्रशासक जो अकाउण्टेण्ट रखते हैं, जिनका काम चिकित्सकीय निर्णय लेना और स्वास्थ्य सुविधाओं की प्रभावी राशनिंग करना होता है। चाहे अधिक स्वास्थ्य सुविधा दी जाये या सुविधाओं में कटौती की जाये-- दोनों ही तरीकों का उद्देश्य है ज्यादा से ज्यादा मुनाफा बटोरना। नतीजा यह होता है कि कभी लोगों को बहुत ज्यादा स्वास्थ्य सेवा मिलती है, तो कभी बहुत ही कम। दोनों ही हालात में हमारा स्वास्थ्य मुनाफाखोरी की सनक का दुष्प्रभाव झेलता है। इस व्यवस्था की अतार्किकता का फल अमीरों को भी चखना पड़ता है, जिनका जरूरत से ज्यादा इलाज कर दिया जाता है। हमारे देश में गलत इलाज के कारण प्रतिवर्ष लगभग दो लाख लोगो को मार डाला जाता है। बहुत सारे लोग अत्यधिक प्रचार वाली दवाओं के गलत इस्तेमाल, पैसा कमाने के लिए किये गये गैरजरूरी इलाज या ऐसे ही अन्य नुस्खों के चलते मर जाते हैं।

तीन-- 'मन्थली रिव्यू' के पाठकों के लिए इस परिकल्पना की ज्यादा विस्तार से व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। स्वास्थ्य सेवाओं के मौजूदा व्यवस्था गैरबराबरी की नींव पर खड़ी है। हममें से बहुत थोड़े लोगों को ही दरअसल ये सेवायें मिल पाती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं तक बहुत थोड़े से लोगों की ही पहुँच है, जबकि अधिकांश इन सुविधाओं से वंचित हैं।

चार-- हमने एक रोग-ग्रस्त समाज का निर्माण किया है और अब इससे होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए हम ज्यादा से ज्यादा पैसा लगा रहे हैं। हम अधिक प्रदूषण और बढ़ते तनावों की गिरफ्त में हैं और इसीलिए यह विडम्बना ही है कि हमारे पास हृदय शल्य चिकित्सा की अपनी दक्षता प्रदर्शित करने के लिए ज्यादा अवसर मौजूद हैं। पहले हम अधिकाधिक लोगों को दुर्दशा में धकेलते हैं, फिर मनोचिकित्सा और मनोरोग की

दवाओं पर ज्यादा खर्च करते हैं। समकालीन रूस में सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्थिति को देखने से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है। सबके लिए इलाज की व्यवस्था के समाप्त हो जाने के बाद से वहाँ की पूरी आबादी प्रारम्भिक पूँजीवाद की तमाम बुराइयों को झेल रही है। वे महामारियों, काली खाँसी और डिप्थीरिया जैसी बीमारियों के थपेड़े झेल रहे हैं और इस आधुनिक युग में भी उन्हें एक बिलकुल अनूठी परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है, यानी गिरती हुई जीवन प्रत्याशा-- वहाँ औसत आयु 64 वर्ष से गिरकर मात्र 59 वर्ष रह गयी है। हमारा समाज एक रोगग्रस्त समाज है, जो अपने ही द्वारा किये गये नुकसानों की भरपाई के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के मद में भारी खर्चे की माँग करता है।

संकट के बारे में प्रतिक्रियाएँ

ऐसा नहीं कि स्वास्थ्य सेवाओं की इस दुर्दशा पर किसी ने ध्यान ही न दिया हो। दरअसल, इसको लेकर लोगों में व्यापक और बढ़ता असन्तोष मौजूद है और इस स्थिति से उबरने के लिए कई कोशिशें भी हुई हैं।

पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य

इस समस्या के समाधान के लिए पारिस्थितिकीविद् जो पहुँच (एप्रोच) अपनाते हैं उसे वे पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य कहते हैं। वे मानते हैं कि पारिस्थितिकी कई कारणों से दबाव में रहती है, जैसे-- विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों, प्रदूषित भोजन और पानी, बहुत ज्यादा तनाव और जीवन के दैनिक लय में बदलाव के चलते। उदाहरण के लिए लगभग पूरी दुनिया में बिजली के प्रयोग के कारण लोग कम सोते हैं, जिसके कारण हमारे शरीर-क्रिया में बदलाव आ जाता है। यदि हम मानव-जीवविज्ञान की जाँच-पड़ताल सामाजिक जीवविज्ञान के रूप में करें, तो हमारा ध्यान उन चीजों की ओर जाता है, जो मानव-जीवविज्ञान का अटल सिद्धान्त प्रतीत होता है, पर दरअसल होता नहीं है। उदाहरण के लिए, यह काफी प्राचीन मान्यता है कि उम्र के साथ रक्तचाप का बढ़ना बूढ़े होने की प्रक्रिया का स्वाभाविक हिस्सा है। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि कालाहारी के कुंग बुशमेन लोगों में रक्तचाप उम्र के साथ सिर्फ यौन सक्रियता की आयु में ही बढ़ता है और उसके बाद स्थिर हो जाता है। हमारे रक्तचाप का पैटर्न इस पर निर्भर करता है कि हम किस तरह के समाज में रह रहे हैं। तनाव से सम्बन्धित हार्मोनों के उतार-चढ़ाव में भी हम इसे देख सकते हैं, जो अलग-अलग लोगों की सामाजिक स्थिति के हिसाब से बदलता है।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में हाल में हुए अध्ययनों से यह पता चला है कि हाईस्कूल में पढ़नेवाले और पढ़ाई में समान स्तरवाले किशोरों के समूहों में किसी भी तरह के तनाव की स्थिति में मजदूर वर्ग से आने वाले छात्रों में कार्टिसॉल हार्मोन की मात्रा लम्बे समय तक बढ़ती रहती है, जबकि उच्चवर्ग के बच्चों में पहले तेजी से वृद्धि और फिर गिरावट

दिखायी देती है। मजदूर वर्ग के किशोरों की शरीर-क्रिया उनकी सामाजिक स्थिति के कारण बदल गयी, चाहे वे अपनी मजदूर वर्गीय हैसियत को स्वीकार करें या नहीं। स्पष्ट है कि हर आदमी का शरीर उसकी वर्गीय स्थिति को जानता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कितनी अच्छी तरह उसे अपनी वर्गीय पहचान को छुपाना सिखाया गया है। इस तरह मानव-शरीरविज्ञान एक समाजीकृत विज्ञान है और भिन्न-भिन्न सामाजिक स्थितियों में पर्यावरण के साथ लोगों के भिन्न-भिन्न सम्बन्ध बनते हैं। ज्ञान ने हमें परिस्थितिकीय स्वास्थ्य की अवधारणा तक पहुँचाया है तथा पारिस्थितिकीविदों और सामाजिक स्वास्थ्य के कर्ता-धर्ताओं को इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए एक मंच पर लाया है कि पूरे परिस्थितिकी के स्वास्थ्य का समग्रता में कैसे आकलन किया जाये।

पर्यावरण सम्बन्धी न्याय आन्दोलन

यह आन्दोलन दूसरे लोगों द्वारा किये गये इस प्रेक्षण से पैदा हुआ कि पर्यावरण के लिए नुकसानदेह कचरे को जलाना या उसे कहीं ठिकाने लगाना हो तो सबसे अच्छा रास्ता यही है कि इस काम को अफ्रीकी मूल के अमरीकियों की बस्ती के करीब निपटाया जाये। अल्पसंख्यकों के इलाके में जमीनें अपेक्षतया सस्ती होने के कारण वहाँ कचरा जलाने वाले संयन्त्र लगाना सस्ता पड़ता है। प्रभुत्वशाली लोगों द्वारा बनाये गये इलाकाई वितरण के नियम (जोनिंग रूल्स) भी वहाँ ज्यादा ढीले हैं। इस तरह प्रदूषण और औद्योगिक कचरे से स्वास्थ्य को खतरा पहुँचाना आज उत्पीड़न का ही एक पहलू हो गया है। प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों का सभी पर एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, विभिन्न पेशों से जुड़े स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरों को ही लें-- बालू क्षेपक जेट से इमारतों की सफाई करने वाले आदमी के स्वास्थ्य को उस आदमी की तुलना में एकदम भिन्न तरह का खतरा है, जो टेबुल पर बैठकर दुर्घटना में हुए नुकसान और बीमा के भुगतान का हिसाब-किताब करता है। अपमानजनक वातावरण में रहने की स्थिति में भी वर्ग और उत्पीड़न की दशाओं के अनुरूप भिन्नता होती है। पर्यावरण सम्बन्धी न्याय आन्दोलन इसी स्थिति के खिलाफ एक कार्रवाई है। यह नुकसानदेह कचरे का किसी खास इलाके में ढेर लगाने के खिलाफ संघर्ष करता है कि औद्योगिक समाज के खतरों को सभी लोग समान रूप से झेलें।

सामाजिक आधार पर स्वास्थ्य का निर्धारण

महामारी-विज्ञान के विशेषज्ञों के बीच इस ढंग से सोचने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। आंशिक तौर पर इसका कारण रुडोल्फ विर्चो और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा 19वीं सदी में ही चिन्हित इस सच्चाई की दोबारा खोज है कि पूँजीवाद अपने आप में स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाली एक व्यवस्था है। इस बात को ध्यान में रखना तब और भी

महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जब रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी टीकाकार यह दावा करते हैं कि अब समाज में कोई वास्तविक गरीबी नहीं रह गयी है। उनकी दलील है कि भले ही कुछ लोग दूसरों से ज्यादा पैसा बना रहे हैं और वे बड़ा रंगीन टीवी भी खरीद सकते हैं, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि गरीबों के पास टीवी नहीं है। किसी गरीब परिवार की कार थोड़ी पुरानी हो सकती है या हो सकता है कि वह अक्सर रेस्तराँ में खाना न खाता हो, लेकिन दक्षिणपंथी ज्ञानी यह मानते हैं कि इस गैर बराबरी के बावजूद सच्चाई यही है कि असल में अब कहीं कोई गरीबी नहीं बची है। इसका उत्तर बड़ी आसानी से उन बहुत सारे अध्ययनों में मिल जाएगा, जो यह दर्शाते हैं कि काले लोगों की औसत आयु गोरों की तुलना में 10 साल कम है, जो दरअसल जातीय उत्पीड़न की काले लोगों द्वारा चुकायी जा रही कीमत है। विशेषाधिकार प्राप्त ऊपरी तबकों की तुलना में गरीब और उत्पीड़ित अल्पसंख्यक समुदायों को स्वास्थ्य सेवाओं का 25 प्रतिशत कम लाभ ही मिल पाता है। साथ ही, रक्त प्रवाह अवरुद्ध होने से होने वाली दिल की बीमारी, सभी तरह के कैंसर, मोटापा, बच्चों में विकास का धीमा होना, अनियोजित गर्भधारण और प्रसव के दौरान होने वाली मौत जैसे मामलों में हानिकारक नतीजे या मृत्युदर गरीबी के स्तर के साथ बढ़ती जाती है।

सामाजिक तौर पर स्वास्थ्य के निर्धारण में रुचि रखने वालों में रिचर्ड विल्किन्सन जैसे कुछ अंग्रेज शोधार्थी भी शामिल हैं, जिन्होंने अंग्रेज नागरिक सेवाओं में अलग-अलग पदों पर काम करने वाले लोगों की जीवन प्रत्याशा का अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि स्पष्टतः बहुत बुरी तरह अभावग्रस्त लोगों और खुशहाल लोगों की जीवन प्रत्याशा में तो फर्क था ही, उन खुशहाल लोगों के समूह के भीतर भी आपस में यह फर्क मौजूद था। उन्होंने देखा कि सामाजिक पदानुक्रम और सामाजिक विभेदीकरण केवल अत्यन्त गरीब लोगों में ही नहीं, बल्कि हर कहीं हमारे स्वास्थ्य को चौपट करते हैं। अब इसकी दो परस्पर विरोधी व्याख्याएँ की जा सकती हैं, लेकिन वे दोनो ही कारगर हैं। एक का कहना है कि गरीबी के स्तर से कहीं ज्यादा बीमार बनाने वाली चीज खुद गैरबराबरी है। दूसरे का शब्दशः यह कहना है कि यह सब तुम्हारे दिमाग की खुराफात है। बाद वाली व्याख्या के पक्ष में बाबून बन्दरों पर किये गये अध्ययनों का हवाला दिया जाता है, जो यह दर्शाते प्रतीत होते हैं कि अपनी टुकड़ी के पदानुक्रम में ऊपर वालों का स्वास्थ्य अपेक्षतया अच्छा होता है। उनकी धमनियाँ अपेक्षतया साफ होती हैं, तनाव में वे उच्चवर्ग के आदमी जैसा ही व्यवहार करते हैं, उनका कार्टीसॉल हार्मोन का स्तर तनाव की दशा में पहले तेजी से ऊपर जाता है और फिर सीधे नीचे आ जाता है। नीचे की रैंक वाले बाबून बन्दरों के ऊपर तनाव का प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है। उनकी जीवन प्रत्याशा भी अपेक्षतया कम होती है। लेकिन अगर आप जानवरों के इस समुदाय में हस्तक्षेप करके उनके सामाजिक पदानुक्रम

को बदल दें, तो कुछ ही महीनों के भीतर बाबून बन्दर की शरीर-क्रिया उसकी सामाजिक हैसियत के लक्षणों के के अनुरूप बदल जायेगी। इसी आधार पर कुछ लोग कहते हैं कि आम जनता अपनी सामाजिक हैसियत को इसी रूप में लेती है और इसलिए उन्हें सिखाया जाना चाहिए कि वे जिस परिस्थिति में हैं उसी के साथ तालमेल बिठाएँ, क्योंकि आखिरकार हम खुद ही अपनी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। चिकित्सा और विकास से सम्बन्धित कुछ आन्दोलनों में इस वाक्यांश के इस्तेमाल का काफी प्रचलन है-- अपनी परिस्थितियों के निर्माता हम खुद ही हैं। इसमें कोई खास बात नहीं है कि आप काम के लिहाज से वेतन पाते हैं और गरीब हैं, बल्कि समस्या यह है कि यह बात आपको दुख पहुँचाती है और इसलिए हमने लोगों को खुश रखने वाली गोलियाँ ईजाद की हैं-- गहरी निराशा का इलाज निराशाजनक हालात से छुटकारा पाना नहीं है, बल्कि उन्हीं हालात में लोग बेहतर कैसे महसूस करें, इसमें उनकी सहायता करना है। इस तथाकथित 'सामाजिक आधार पर स्वास्थ्य का निर्धारण' को एक और तरीके से भी देखा जा सकता है। स्वास्थ्य की समस्या को सिर्फ अपर्याप्त आय (जिसमें बढ़ोत्तरी जरूरी है) का सरल परिणाम मानने के बजाय इसे पूर्णतः भेदभाव पर आधारित वर्ग समाज के परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। इस बाद वाले तरीके पर जोर देने वाले लोग इसे अधिक क्रान्तिकारी अवस्थिति मानते हैं, बजाय इसके कि केवल यही चर्चा की जाये कि परम वंचना स्वास्थ्य को कैसे नुकसान पहुँचाती है, क्योंकि तब ऐसा लगता है कि लोगों की आय बढ़ाना ही समस्या का समाधान है। लेकिन इसकी जगह वे कहते हैं कि इसके लिए वर्गों के बीच मौजूद गैरबराबरी को खत्म करना होगा। चूँकि एक ही अध्ययन से परस्पर विरोधी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, इसलिए हमें इस बात को भी रेखांकित करने की जरूरत है कि असमानता हमारे स्वास्थ्य को भिन्न-भिन्न तरीकों से प्रभावित करती है। जब अमीर लोग गरीबी के बारे में सोचते हैं, तब वे कंगालीकरण के आधरभूत ढ़ाँचे की जाँच किये बिना ही केवल इस आशय से इस पर विचार करते हैं कि आमदनी थोड़ी कम है। गरीबी सबसे पहले तो लोगों को घोर कंगाली में धकेलती है और वस्तुतः कम खाने या खराब खाना खाने को बाध्य करती है। सीलन भरे बदबूदार घरों में रहने वाले बच्चे का स्वास्थ्य उन बच्चों की तुलना में बहुत खराब होता है, जो साफ-सुथरे और हवादार घरों में रहते हैं। चिरन्तन कंगाली अपने-आप में बहुत सारे तरीकों से स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाती है।

कुछ व्याधियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें हम बार-बार घटित न होने, लेकिन अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाले खतरे कहते हैं। इनका अभिप्राय उन अनुभवों से है, जो सबको नहीं होते, लेकिन हो सकते हैं। इसलिए वे खुशहाल जीवन के लिए निरन्तर खतर बने रहते हैं। 'टाइम ऑन द क्रास : द इकानॉमी ऑफ नीग्रो स्लेवरी' (सूली पर चढ़ा समय : नीग्रो दासता का अर्थशास्त्र) नामक अपनी पुस्तक में शिकागो स्कूल के दक्षिणपन्थी अर्थशास्त्री

राबर्ट फोजेल ने लिखा है कि अधिकांश दासों को कोड़े नहीं लगाये जाते थे। उन्होंने आगे कहा है कि दासता का स्वरूप वैसा नहीं था, जैसा कि हम 'अंकल टाम का केबिन' किताब को पढ़कर कल्पना करते हैं और यह कि दासता के पीछे एक निश्चित आर्थिक तार्किकता थी। वे इस तथ्य को नजरअन्दाज करते हैं कि दासों को शारीरिक उत्पीड़न का खतरा लगातार महसूस होता रहता था, यहाँ तक कि उस समय भी, जब वे काम पर न रखे गये हों। हो सकता है कि अधिकांश दास कोड़े से ने पीटे गये हों, परन्तु उन सभी ने या तो पिटायी होते देखी थी या वे उसके बारे में जानते थे। इसी तरह से गरीब बस्तियों में रहने वाले अधिकांश बच्चे भी गोली के शिकार तो नहीं होते, परन्तु हर बार घर से बाहर या किसी बड़ी दुकान में जाने पर हमेशा इसका खतरा मँड़राता रहता है। बहुत कम घटित होने वाले, लेकिन अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाले खतरों के ये कुछ उदाहरण हैं।

बार-बार घटित होने और अपेक्षयता कम तीखे अपमान भी हमें रोजमर्रा की प्रताड़ना के तौर पर दिखायी देते हैं। उदाहरण के लिए, अफ्रीकी मूल के अमरीकी समुदायों में हम इसे देख सकते हैं। उन परिस्थतियों में आदमी को रणनीतिक निर्णय लेने के लिए लगातार बाध्य किया जाता है। क्या मैं इतना धीरे-धीरे चल रहा हूँ कि पुलिस अधिकारी को मेरे ऊपर यह शक हो जाये कि मैं आवारा घूम रहा हूँ? या मैं इतना तेज तो नहीं चल रहा हूँ कि वह यह सोचने लगे कि मैं कोई अपराध करके भाग रहा हूँ? यदि मैं रात में अपनी प्रयोगशाला में काम करने के लिए विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश करता हूँ, तो पुलिस वाला कहीं मुझे चोर समझकर रोक तो नहीं लेगा? मुझे याद है कि एक बार प्यूर्टोरिको के रेजीडेण्ट कमिश्नर को वाशिंगटन स्थित अपने दफ्तर जाते समय पुलिस ने रास्ते में रोक लिया था। जब उन्होंने पुलिस वालों को अपना परिचय कांग्रेस के सदस्य और रेजीडेण्ट कमिश्नर के रूप में दिया, तो उन लोगों ने जोरदार ठहाका लगाकर उनका उपहास किया, क्योंकि कमिश्नर रामोस एण्टोनीनी एक काले आदमी थे।

न्यूरोट्रांसमीटरों के अध्ययन से अब हमें यह पता चला है कि सामाजिक अनुभव सिर्फ हमारे मस्तिष्क पर ही नहीं अंकित होते। मस्तिष्क सामाजिक अनुभवों को ग्रहण करता है और उन्हें तन्त्रिका-तन्त्र की बहुत सारी शाखाओं-प्रशाखाओं के माध्यम से न्यूरोट्रांसमीटरों को प्रसारित कर देता है। न्यूरोट्रांसमीटर रासायनिक तौर पर हमारे श्वेत रक्तकणिकाओं में पाये जाने वाले रोग प्रतिरोधक पदार्थों के समान होते हैं। एक निश्चित अर्थ में हम अपने पूरे शरीर से सोचते हैं, पूरे शरीर से महसूस करते हैं और इसलिए समाज में अक्सर होने वाली अपमान की घटनाओं और कभी-कभार घटने वाले बड़े खतरों से मिलकर बुरी सामाजिक दशाओं के तरह-तरह के पैटर्न बनते हैं, जिनके बीच जीते हुए हमें जो सामाजिक अनुभव हासिल होते हैं, उनको हमारा पूरा शरीर ही ग्रहण करता है। वंचना के अनुभव के कई आयाम हैं, परन्तु वे अक्सर उन सांख्यिकीविदों द्वारा नजरअन्दाज

कर दिये जाते हैं जो बहुत सरलीकृत ढंग से गरीबी को महज आमदनी की मात्राओं में अन्तर मानते हैं।

'सबके लिए चिकित्सा' आन्दोलन

यह समूह एक राष्ट्रीकृत स्वास्थ्य-बीमा व्यवस्था का समर्थक है। इसने अमरीका तथा कनाडा की स्वास्थ्य व्यवस्थाओं की तुलना करते हुए अपनी इस माँग की दिशा में काफी प्रयास किया है। कई प्रगतिशील डॉक्टर इस आन्दोलन में सक्रिय हैं।

वैकल्पिक चिकित्सा

वैकल्पिक चिकित्सा का यह आन्दोलन मुख्यतः व्यक्ति के स्वास्थ्य पर ही विचार करता है। यह खुराक, व्यायाम, होमियोपैथी, कायरोप्रैक्टिक (हड्डियों के जोड़ों, खासकर रीढ़ की चिकित्सा) और प्राकृतिक चिकित्सा के जरिए उपचार पर जोर देता है, जिसके बारे में लोगों की यह धारणा है कि स्थापित चिकित्सा व्यवस्था ने इन खास चिकित्सा पद्धतियों पर समुचित ध्यान नहीं दिया है। ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति की तरह स्वास्थ्य के सीमित लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए 'रामबाण इलाज' के नुस्खे अपनाने की जगह यह समूह चिकित्सा को समग्रता में लेने का नजरिया अपनाता है। बहुत आपातकालीन, संगीन बीमारियों की अपेक्षा वे लम्बे समय से ठीक न हो रही पुरानी बीमारियों के इलाज में खासतौर पर गुणकारी प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिए, कैंसर के इलाज के लिए विकिरण और कीमोथिरेपी (रासायनिक इलाज) कराने वाले मरीजों के ऊपर जो दुष्प्रभाव पड़ते हैं, उन्हें कम करने में ये वैकल्पिक पद्धतियाँ मददगार हैं। आधुनिक चिकित्सा की रणनीति यह है कि कैंसरग्रस्त ऊतक (टिश्यू) पर्याप्त रूप से कमजोर होता है और इसलिए इस उम्मीद से उसे तत्काल विषाक्त किया जा सकता है कि विकिरण चिकित्सा या कीमोथिरेपी रोगी को कम नुकसान पहुँचायेगी और कैंसर को जरूर ठीक कर देगी। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा अपनाया गया तरीका यह होता है कि कैंसर पर सीधे आक्रमण करने के बजाय शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने की कोशिश की जाये। इस तरह, ये दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं।

वैकल्पिक चिकित्सा बहुत आकर्षक और बहुत प्रभावशाली होती है, परन्तु यह उन्हीं लोगों को ज्यादा आकर्षित करती है, जिनका अपने जीवन पर पूरा नियन्त्रण है और जो वैकल्पिक स्वास्थ्य सेवाओं की तकनीक और संसाधनों को खरीद पाने में समर्थ हैं। यह कोई जनान्दोलन नहीं है। यह जिस समग्रतावाद की वकालत करता है वह बहुत सतही है। यह कोई सामाजिक समग्रतावाद नहीं है। इसके बावजूद यह समूह उन आन्दोलनों का एक जोरदार प्रतिकार है, जो सबके लिए स्वास्थ्य सेवाओं की माँग तो करते हैं, लेकिन यह नहीं बताते कि वह स्वास्थ्य सेवा किस तरह की हो।

एक आमूलवादी समीक्षा

चिकित्सा पद्धति की आमूलवादी समीक्षा का लक्ष्य उन कारणों पर तो विचार करना है ही, जो लोगों को बीमार बनाते हैं, लेकिन साथ ही इस पर भी विचार करना है कि लोगों को किस तरह की और किस कोटि की स्वास्थ्य सेवायें मिल रही हैं। स्वास्थ्य के बारे में मार्क्सवादी पहुँच इकोसिस्टम स्वास्थ्य, पर्यावरण सम्बन्धी न्याय, सामाजिक आधार पर स्वास्थ्य का निर्धारण, ''सबके लिए स्वास्थ्य'' और वैकल्पिक चिकित्सा की सम्पूर्ण जानकारी को अपने में समाहित करने की कोशिश करेगी। स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति मेरी पहुँच का एक पहलू यह है कि मैं परिस्थितिकीविद् रहा हूँ। मैंने अलग-अलग भौगोलिक स्थितियों, व्यवसायिक समूहों, आयुवर्गों या किसी अन्य सामाजिक आधार पर परिभाषित श्रेणियों के अनुरूप स्वास्थ्य की दशाओं में पायी जाने वाली भिन्नताओं पर विचार किया। मेरे सामने प्रश्न यह था कि अमरीका के विभिन्न राज्यों, कैंसस (अमरीका) की विभिन्न काउण्टियों, क्यूबा के विभिन्न प्रान्तों, ब्राजील के विभिन्न स्वास्थ्य जनपदों या कनाडा के एक प्रान्त के भीतर स्वास्थ्य सेवाओं के परिणामों में ठीक-ठीक कितना अन्तर मौजूद है। मेरे इस अध्ययन से बहुत ही रोचक बानगी सामने आयी। मैंने और मेरे सहकर्मियों ने इनमें से हर एक इलाके में शिशु-मृत्यु की औसत दर और साथ ही उस दर में पायी जानेवाली इलाकेवार भिन्नताओं की जाँच की। इस जाँच-पड़ताल ने अन्य कारकों के अलावा स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता के अच्छे से अच्छे और घटिया से घटिया स्वरूपों को उजागर किया। हमने देखा कि अमरीका में शिशु-मृत्युदर कमोबेश क्यूबा के समकक्ष थी, कैंसस में अमरीकी औसत से थोड़ी-सी अधिक थी, जबकि ब्राजील के रियोग्राण्ड डो सुर में बहुत ही अधिक शिशु-मृत्युदर पायी गयी, जो तीसरी दुनिया के देशों की खास पहचान बनी हुई है। यह आश्चर्यजनक नहीं कि क्यूबा में स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर इतना ऊँचा था। लेकिन हमने उन्हीं आँकड़ों का अध्ययन एक ज्यादा न्यायसंगत और प्रभावशाली मानक, शिशु-मृत्युदर के सबसे अच्छे और सबसे खराब आँकड़ों के अन्तर के परिप्रेक्ष्य में, यानी किसी देश-विशेष के भीतर, विभिन्न इलाकों के बीच शिशु-मृत्युदर में अन्तर के परिप्रेक्ष्य में किया, तो और भी नये रहस्योद्घाटन हुए। कैंसस की अलग-अलग काउण्टिओं के मामलों में सबसे ज्यादा अन्तर दिखायी दिये, जबकि अलग-अलग अमरीकी राज्यों के आँकड़ों में कुछ कम अन्तर मिला। रियो ग्राण्ड के विभिन्न स्वास्थ्य जनपदों में यह अन्तर और भी कम था, जबकि सबसे कम अन्तर क्यूबा के भीतर था। जब हम मृत्यु के सभी कारणों का अध्ययन करते हैं, तब भी ऐसे ही नतीजे सामने आते है। एक बार फिर, हमने औसत मृत्युदरों और अच्छी-बुरी दरों के बीच अन्तर की तुलना करके उनका अध्ययन किया; हमने सबसे अच्छी और सबसे खराब दर के बीच अन्तर को औसत मृत्युदर से भाग दिया। कैंसस के लिए

यह भागफल 0.85 था, लेकिन क्यूबा में यह सिर्फ 0.34 था । हमने देखा कि क्यूबा और कैंसस में कैंसर की दरें लगभग समान हैं, लेकिन क्यूबा की तुलना में कैंसस के भीतर क्षेत्रीय भिन्नता ज्यादा है। कनाडा के आँकड़ों की जाँच करने पर हमने पाया कि इस मामले में सास्काचवान की स्थिति क्यूबा और कैंसस के बीच में कहीं अवस्थित थी।

हमने इन स्थानों का चुनाव इस आधार पर किया था कि ब्राजील, कनाडा और कैंसस-- सभी जगहों पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ हैं, जिनमें निवेश के निर्णय अधिकतम, मुनाफा कमाने के उद्देश्य से लिये जाते हैं, न कि आर्थिक बराबरी लाने के किसी व्यापक सामाजिक उद्देश्य को ध्यान मे रखकर। दूसरी ओर, क्यूबा के साथ-साथ सास्काचेवान और रियो ग्राण्ड डो सुर में राष्ट्रीकृत व्यवस्थाएँ हैं, जो एक खास भौगोलिक इलाके में काफी हद तक एक समान स्वास्थ्य सेवाएँ मुहैया कराती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की अधिक बेहतर और न्याय-संगत व्यवस्था का होना कनाडा और ब्राजील के लिए फायदेमन्द है, लेकिन उनका पूँजीवादी होना, जिससे क्यूबा मुक्त है, उनके लिए नुकसानदेह साबित हो रहा है। फलस्वरूप, स्वास्थ्य सेवाओं के परिणामों में अन्तर की दृष्टि से कनाडा और ब्राजील की स्थिति मध्यवर्ती है।

विभिन्न बीमारियों की आपस में तुलना करते समय भी यह पद्धति इस्तेमाल की जा सकती है। हमारे सामने सवाल यह है कि बड़े भौगोलिक इलाकों और राज्यों के आँकड़ों में यह अन्तर अधिक होगा या काउण्टी जैसे छोटे इलाकों के आँकड़ों में। कई कारणों के चलते दोनों ही छोटे-बड़े इलाकों में अन्तर हो सकता है। उदाहरण के लिए राज्यों जैसे बड़े इलाकों के आँकड़े मौसम की विविधता से प्रभावित हो सकते हैं। लेकिन मौसम ही अकेला परिवर्तनशील कारक नहीं है। कई दूसरे ऐसे कारक भी हैं, जिनमें छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों के बीच काफी ज्यादा अन्तर हो सकता है। लेकिन, जब हम एक बड़े इलाके का औसत लेते हैं, तो यह अन्तर लुप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, अगर हम कैंसस के विचिता शहर के भीतर अलग-अलग बस्तियों पर ध्यान दें, तो हम पायेंगे कि उनकी शिशु-मृत्युदर में तीन गुना तक का अन्तर है। हम पाते हैं कि कैंसस की अधिकांश काउण्टियों में बेरोजगारी की औसत दर 9 या 10 प्रतिशत है, जबकि उत्तर-पूर्व विचिता में 30 प्रतिशत है। ऐसा क्यों? क्योंकि ये बस्तियाँ बेतरतीब ढंग से बसे हुए पर्यावरण के अलग-अलग खण्ड नहीं है, बल्कि वे एक ही ढ़ाँचे के अंग हैं। जहाँ कहीं भी धनिको की एक बस्ती होगी, वहाँ उनकी सेवा के लिए एक गरीब बस्ती की भी जरूरत होगी, जैसे कि उत्तर-पूर्व विचिता में। इसलिए जहाँ कहीं भी हमें बस्तियों के स्तर पर आँकड़े उपलब्ध हो सकते हैं, वहाँ हमें सामाजिक दशाओं में भारी अन्तर और इसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और मात्रा में भी बहुत ज्यादा भेदभाव दिखायी देगा, जो चिकित्सा सम्बन्धी हमारे मौजूदा ज्ञान या संसाधनों को देखते हुए एकदम नहीं होना चाहिए था।

एक अन्य रोचक मामला मेक्सिको के कुछ गाँवों में किये गये एक अध्ययन में सामने आया। उन गाँवों का क्रम इस आधार पर बनाया गया था कि वे मेक्सिको के जीवन स्तर की तुलना में कितना ज्यादा हाशिये पर फैंके गये थे, यानी उनका जीवन स्तर कितना निम्न था। इस अध्ययन में कुछ परिवर्तनशील कारक लिये गये, जैसे कितने लोगों को सीधे सप्लाई का पानी मिलता है और आबादी का कितना बड़ा हिस्सा स्पेनी भाषा बोलता है। शोध से पता चला कि जो समुदाय जितना ज्यादा हाशिये पर फेंका गया था, उसके स्वास्थ्य पर उतने ही बुरे प्रभाव पड़े थे, लेकिन अप्रत्याशित रूप से आँकड़ों ने यह भी दर्शाया कि गरीब गाँवों से प्राप्त नतीजों में यह अन्तर बहुत ज्यादा है, जबकि मेक्सिको की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत हो गये गाँवों में ऐसा नहीं था।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह पर्यावरण सिद्धान्त अभी तक स्वीकृत नहीं हुआ है कि जब कोई समुदाय या कोई व्यक्ति किसी भी कारण से तनावग्रस्त होता है (मसलन, कम आमदनी या खराब आबोहवा के कारण), तो वह अन्य भेद-भावों के प्रति ज्यादा संवेदनशील हो जाता है। इसलिए अगर लोगों की आय बहुत कम है, तो मौसम के कारण तापमान में होने वाले परिवर्तन उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, पतझड़ के अन्त और जाड़े की शुरूआत में अस्पतालों के आपातकालीन कक्ष ऐसे बहुत सारे लोगों से भरे रहते हैं, जो मिट्टी तेल के स्टोव, तन्दूर और दूसरे ऐसे खतरनाक साधनों के इस्तेमाल से जल गये होते हैं, ऐसे लोगों के लिए तापमान में थोड़ा-सा परिवर्तन भी उनके स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव छोड़ सकता है। यह एक ऐसा कारक है, जिससे अधिक सम्पन्न लोग प्रभावित नहीं होते। यही बात भोजन के बारे में भी सच है। जब लोग बेरोजगार होते हैं या जब कीमतें बढ़ती हैं, तो वे अपने भोजन और अन्य खर्चों में कटोती करने के लिए मजबूर होते हैं। इसका उनके पोषण पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। अगर आप एक अच्छे खरीद्दार हैं, सुपर बाजार के उन विज्ञापनों को ध्यान से देखते हैं, जिनमें कृषि विभाग द्वारा गरीबों को मिलने वाले अनुदान की चर्चा होती है, तो आप सरकारी सहायता का लाभ उठा सकते हैं। ऐसी स्थिति में जो लोग इन अनुदानों को हासिल करने के लिए लालायित रहते हैं, वे यह मान लेंगे कि आप सस्ता सौदा पटाने में उस्ताद हैं। लेकिन मान लीजिये कि आप इतने तेज नहीं हैं या आप विज्ञापन तो पढ़ लेते हैं, परन्तु खरीद्दारी के विशेष अवसर का लाभ उठाने के लिए दो घण्टा नहीं निकाल पाते या फिर आप एक ऐसी बस्ती में रहते हैं, जहाँ का स्थानीय सुपर बाजार उतना लाभदायक नहीं हैं, जितना कि उसकी राष्ट्रीय शृंखला के मालिकों ने सोचा था और इसलिए उसे बन्द कर दिया जाता है और उसके साथ ही अच्छा और सस्ता अनाज पाने का अवसर भी आपके हाथ से चला जाता है या मान लीजिये कि आप दोपहर के भोजन में एक खास तरह का खाना पसन्द करते हैं, लेकिन उसे बेचने वाली मशीन तक जाकर आने के लिए आपको सिर्फ आधे घण्टे

की छुट्टी दी जाती है। इस तरह की परिस्थितियों में आप कहाँ काम करते हैं, आप में कितना दम है, बच्चों की देखभाल करनेवाला रखे हुए हैं या नहीं, ऐसी ढ़ेर सारी बातें, जो अलग-अलग लोगों में एक समान नहीं होतीं, आपके स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव डाल सकती हैं।

विकल्प चुनने का भ्रम

गरीब समुदाय में ही खराब स्वास्थ्य वाले लोगों की भरमार होती है-- इस पर रूढ़िवादी कहेंगे, ''हाँ, यह तो साफ है कि गरीबी तुम्हारे लिए अच्छी नहीं है, लेकिन फिर भी सभी लोगों का बुरा हश्र नहीं होता। मैंने अपना भविष्य खुद बनाया, तो तुम क्यों नहीं बना सकते? इसी बस्ती से निकले कुछ लोग आज निगमों के शीर्षस्थ अधिकारी बन चुके हैं।'' लोगों में लगातार बढ़ते जा रहे असुरक्षा-बोध को वे नजरअन्दाज कर देते हैं। जिन्दगी की बहुत मामूली लगने वाली भिन्नताएँ भी किसी ऐसे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाल सकती है, जिसे हाशिये पर फेंक दिया गया हो। मान लीजिये कि किसी छात्रा की नजर कमजोर है, लेकिन लम्बी होने के कारण उसे कक्षा में पीछे बैठा दिया जाता है। काम के बोझ से दबा अध्यापक इस पर ध्यान ही नहीं दे पाता कि वह छात्रा ब्लेकबोर्ड नहीं पढ़ सकती। वह झल्ला उठता है और अपने सामने वाली डेस्क पर बैठे बच्चे से झगड़ने लगता है। अचानक ''सीखने में समस्या'' वाली श्रेणी में डालकर उसे व्यवसायिक कोर्स में स्थानान्तरित कर दिया जाता है, जबकि सम्भव था कि वह एक महान कवियित्री बनती। अधिक सम्पन्न समुदायों में, जहाँ कक्षाओं में बच्चे कम होते हैं और जिसके चलते शिक्षकगण बच्चों पर पूरा ध्यान देते हैं, इस बच्ची की समस्या को एक चश्मा बनवाकर हल किया जा सकता था। व्यक्तियों के बीच के फर्क किसी भी वजह से हो सकते हैं-- निजी अनुभवों के बढ़ते जाने से और यहाँ तक कि अनुवांशिकता से भी। लेकिन जब किसी खास मानवीय अभिलाक्षणिकता के लिए अनुवांशिकता जिम्मेदार होती भी है, तो उसके कुछ खास सन्दर्भ होते हैं। मसलन, विषैला धुँआ उगलने वाली एक फैक्ट्री में कार्यरत मजदूरों के कैंसरग्रस्त होने की दर अपेक्षाकृत ऊँची होगी। उन मजदूरों में से ऐसे लोगों को कैंसर होने की सम्भावना सबसे ज्यादा होगी, जिनका यकृत (लीवर) किसी खास रसायन की विषाक्तता को कम करने में अक्षम होगा। यह एक अनुवांशिक लक्षण है और इसलिए यह एक अनुवांशिक बीमारी है। लेकिन यह तभी होगी, जब किसी व्यक्ति को विषाक्त धुँए में साँस लेना पड़े। अर्थात् कैंसर सिर्फ अनुवांशिकता के चलते नहीं होता, यह पर्यावरण से भी पैदा होता है।

मामूली जैव भिन्नताएँ भी ऐसा केन्द्र बिन्दु बन सकती हैं, जिनके इर्द-गिर्द जीवन के महत्त्वपूर्ण नतीजे तय किये जाते हैं। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है त्वचा का रंग (पिगमेन्टेशन)। अफ्रीकी और यूरोपी मूल अमरीकियों में मिलेनिन (त्वचा का रंग निर्धारित

करनेवाला तत्व) की मात्रा में अन्तर का महत्त्व अनुवांशिकता और शरीर-विज्ञान के दृष्टिकोण से बहुत ही नगण्य होता है। यह सिर्फ इस बात का परिणाम है कि त्वचा में रंग-द्रव्य किस तरह जमा होता है। लेकिन इसके चलते आपको 10 साल जेल में सड़ना पड़ सकता है। तो क्या यह कोई प्राणघातक जीन है? क्या यह कोई ऐसा जीन है, जो त्वचा में रंग-द्रव्य की मात्रा बढ़ा देता है? एक ऐसा जीन, जो आपके पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने की सम्भावना को बढ़ा देता है? कोई भी स्थापित अनुवांशिकीविद पारिवारिक इतिहास पर एक नजर डालेगा और यह तय कर देगा कि अगर आपके चाचा गिरफ्तार हुए थे, तो आपके गिरफ्तार होने की सम्भावना भी काफी अधिक है। निष्कर्ष यह कि अपराध का कारण अनुवांशिक होता है। अनुवांशिकता के नियमों का यान्त्रिक तरीके से पालन करते हुए किसी महिला या पुरुष विशेषज्ञ ने अब तक यह सिद्ध कर दिया होता कि अपराध वंशानुगत होता है। यह विचार उतना ही बकवास है, जितना यह खयाल कि काले लोगों को खराब जीन के चलते टी.बी. ज्यादा होती है। अनुवांशिकी सामाजिक दशाओं की व्याख्या करने वाला कोई वैकल्पिक सिद्धान्त नहीं है। यह कार्य-कारण सम्बन्ध की छानबीन करने वाला एक उपकरण मात्र है। दरअसल जीवविज्ञान सम्बन्धी अनुवांशिकीय, पर्यावरण सम्बन्धी और सामाजिक कारकों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े लोग आदमी के आचरण या व्यवहार के क्षेत्र में भी दखलन्दाजी करना चाहते हैं और दलील देते हैं कि गरीब बस्तियों और अमीर बस्तियों के स्वास्थ्य परिणामों में भिन्नता का सम्बन्ध उनके धूम्रपान, व्यायाम और खान-पान सम्बन्धी आदतों से जोड़ा जा सकता है। जो रूढ़िवादी अन्ततः यह मान लेते हैं कि अमीरों और गरीबों के स्वास्थ्य सम्बन्धी नतीजों में बहुत ज्यादा अन्तर है, वे कहते हैं, ''हाँ! यह इसलिए है कि गरीब लोग नासमझी भरे फैसले करते हैं और इसका समुचित इलाज है शिक्षा। हम देखते हैं कि अधिक पढ़ी-लिखी माताओं के बच्चे औरों से बेहतर निकलते हैं। इसलिए हमें लोगों के लिए ऐसे शिक्षा कार्यक्रम बनाने की जरूरत है, जो उन्हें अपनी परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बिठाना सिखाये।'' दरअसल, स्वास्थ्य-शिक्षा के कुछ कार्यक्रम बहुत मूल्यवान हैं। कारखानों के भीतर सुरक्षा के उपाय बताना असुरक्षित स्थितियों का मुकाबला करने में लोगों की मदद करता है। लेकिन आइये, विकल्प के सवाल पर और बारीकी से गौर किया जाये। 'रोग नियन्त्रण केन्द्र' और इन मुद्दों से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य केन्द्र यह बताते हैं कि कुछ ही चीजें हैं, जिन्हें हम चुन सकते हैं, अन्य सभी चीजें पर्यावरण द्वारा हमारे ऊपर थोप दी जाती हैं। वे हमें दो तरह की प्रतिकूल परिस्थितियों में फर्क करने को कहते हैं-- पहली वे, जो हमारे ऊपर थोप दी जाती हैं, जो अन्यायपूर्ण भी हो सकती है और/या उनसे छुटकारा पाया जा सकता है और दूसरी वे, जिनका हमने स्वतन्त्रतापूर्वक चुनाव किया है और जिसके लिए हम केवल खुद को दोषी ठहरा सकते हैं जब किसी

मार्क्सवादी के सामने विकल्प के रूप में ऐसी दो श्रेणियाँ हों, जो आपस में मेल न खाती हों, जैसे पसन्द बनाम पर्यावरण, वंशानुगतता बनाम अनुभव और जैविक बनाम सामाजिक, तो वह जानता है कि खुद इन श्रेणियों पर ही सवालिया निशान खड़ा करना चाहिए। चुनाव में यह भी निहित है कि चुनने को कुछ नहीं है। हमें हमेशा उन विकल्पों के सेट में से ही चुनना होता है, जो किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा हमारे सामने पेश किया गया होता है। राजनीतिक चुनावों और खरीद्दारी के अपने अनुभवों से हम इस बात को जानते हैं। हम अपने भोजन का चुनाव करते हैं, पर हमें एक कम्पनी द्वारा चुनकर उपलब्ध करवाये गये उत्पादों में से ही चुनना होता है। हमारे तमाम चुनावों की एक ही विशिष्टता है-- चुनने के लिए विकल्पों का अभाव, यानी चुनावहीनता। चुनने के अधिकार का इस्तेमाल करने के अवसरों के बारे में भी यही बात लागू होती है। चुनाव करते समय हमेशा पूर्वशर्तें मौजूद होती हैं। यदि जीवन की दशायें बहुत खराब या दमनकारी हों, तो ऐसी चीजों को चुन लेना भी कम बुरा होता है, जो किन्हीं दूसरी परिस्थितियों में मूर्खतापूर्ण चुनाव होतीं।

दूसरे तमाम लोगों की तरह ही, सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े लोग भी किशोरवय में गर्भधारण की समस्या के बारे में बहुत ज्यादा चिन्तित दिखायी देते हैं, क्योंकि आमतौर पर इस तरह का गर्भधारण अच्छी बात नहीं है। किशोरवय की मातायें अनुभवी नहीं होती, उन्हें अपने शिशुओं का खयाल रखने में परेशानी हो सकती है और ऐसी माताओं के बच्चों का वजन कम होने की सम्भावना भी ज्यादा होती है। फिर भी यह देखा गया है कि अफ्रीकी मूल की अमरीकी किशोरी माता के बच्चे का स्वास्थ्य आमतौर पर 20-30 साल की अफ्रीकी मूल की अमरीकी औरत के बच्चे से बेहतर होता है। ऐसा क्यों? रंग-भेद का वातावरण स्वास्थ्य को इतना क्षरित कर देता है कि बच्चा चाहनेवालों के लिए जल्दी बच्चा पैदा करना ही ज्यादा समझदारी का निर्णय होता है। यह एक ऐसी सच्चाई है, जो केवल चलताऊ ढंग से यह कह देने भर से स्पष्ट नहीं हो जाती कि ''किशोरवय की गर्भावस्था लोगों के लिए खतरा है।'' इससे पहले कि हम उसे सरलीकृत ढंग से सार्वजनिक स्वास्थ्य का मुद्दा बनाने के बारे में सोचें, किशोरवय की गर्भावस्था को एक ज्यादा व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है।

दूसरा उदाहरण है धूम्रपान। कार्यस्थल पर आजादी जितनी कम होती है उतना ही धूम्रपान बढ़ता है। जिन लोगों के जीवन में चुनाव के बहुत थोड़े अवसर प्राप्त हैं, वे कम से कम धूम्रपान तो चुन ही सकते हैं। कुछ नौकरियों में अवकाश लेने के चन्द वैध तरीकों में से एक तरीका है काम रोककर बाहर टहलने जाना। धूम्रपान को चुनने वाले कहते हैं- ''हाँ! 20 साल बाद हो सकता है कि मुझे कैंसर हो जाये, लेकिन आज तो पक्के तौर पर मैं इसी दम पर जिन्दा हूँ।'' लोग यदि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक चीजों को पसन्द करते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी पसन्द विवेकहीन है। हमें समझना चाहिए

कि उनकी तर्कपरकता सीमाओं में जकड़ी हुई होती है और उन्हें सबसे खराब परिस्थियों में से सबसे बेहतर को चुनना होता है। अगर लोगों की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाये, तो हम पायेंगे कि उनके अधिकांश मूर्खतापूर्ण दिखने वाले निर्णयों के पीछे उनकी अपनी तुलनात्मक तर्कसंगति होती है। इसलिए ऐसा नहीं कि उनका व्यवहार सिर्फ भाषण पिलाने से बदल जायेगा। आपको उस परिस्थिति में बदलाव लाना पड़ेगा, जिसमें किसी चीज का चुनाव किया गया है।

समय को हम किस तरह से लेते हैं, उससे भी चुनाव करने का एक और आयाम हमारे सामने आता है। स्वास्थ्य के बारे में कोई भी चुनाव करते समय हम यह मानकर चलते हैं कि आज हम जो कुछ भी करेंगे, आगे चलकर वह अपना असर दिखायेगा। इतना स्पष्ट प्रतीत होने के बावजूद यह हर एक का अनुभव नहीं है। दरअसल, अधिकांश लोग अपनी जिन्दगी में उस तरह की या उस स्तर की आजादी का अनुभव नहीं कर पाते, जो उन्हें अपने जीवन पर नियन्त्रण रखने का मौका देती हो या जो उन्हें यह कहने का मौका देती हो कि ''मैं अभी धूम्रपान छोड़ दूँगा, ताकि बीस साल बाद मुझे कैंसर न हो।'' हर कोई अपने जीवन को एक क्रमबद्ध सालाना समय-सारिणी के अनुरूप सुव्यवस्थित नहीं कर सकता। प्यूर्टोरिको में सानजुआन शहर में अन्दरूनी हिस्सों में जिन्दगी का ढंग-ढर्रा कुछ इस तरह का है कि एक आदमी 23 घंटे प्रति दिन के हिसाब से लगातार दो दिन जहाज से माल उतारता है और उसके बाद तीन दिनों तक सोता रहता है और फिर अप्रत्याशित रूप से वह अगले दो दिनों तक एक रेस्तराँ में काम करने लगता है क्योंकि उसके चचेरे भाई या बहन को पहाड़ों में किसी के अन्तिम संस्कार में जाना पड़ जाता है। भविष्य में आपको क्या हो सकता है, इसके बारे में अगर आज ही कोई ठोस योजना नहीं बना सकते, तो समय आपकी प्रतीक्षा में रुका नहीं रहेगा।

दूसरी ओर, समय को किस तरह संयोजित किया जाता है, इसके बारे में पठन-पाठन से जुड़े लोगों का उदाहरण उल्लेखनीय है। छात्र ऐसे पाठ्यक्रम का चुनाव कर सकते हैं और करते भी हैं, जो दो या तीन साल में उन्हें एक पेशे के लिए तैयार कर दे। एक प्रोफेसर उससे भी छोटी अवधि के लिए अपना टाइमटेबुल या तो सोमवार, बुधवार, शुक्रवार को या फिर मंगलवार और बृहस्पतिवार को निर्धारित करके अपना समय व्यवस्थित कर सकता है। डॉक्टर तय करते हैं कि उन्हें कब मरीज देखने हैं, कब पुस्तकालय में जाना है और कब सेमिनार में। कुछ लोग अपने जीवन को इस तरह से व्यवस्थित कर लेते हैं कि हम उनके बारे में कुछ पूर्वानुमान लगा सकते हैं। जाहिर है कि ये पूर्वानुमान सापेक्ष होगें, निरपेक्ष नहीं। अप्रत्याशित रूप से हमें किसी भी समय किसी कार से टक्कर लग सकती है। लेकिन बुनियादी बात है कि आपका अपने जीवन और जीवन के अनुभवों पर जितना ज्यादा नियन्त्रण होगा, उतना ही आप सार्वजनिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों के हिसाब से निर्णय

ले पाने की स्थिति में होंगे और तब चुनने के अधिकार को अमल में लाने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होगी। इसलिए, जो लोग निर्णय और चुनाव की बात करते हैं, उनको सीधा जवाब यही है कि सबसे पहले आप चुनाव के विकल्पों का दायरा बढ़ायें। दूसरे, वे उन आवश्यक उपकरणों का भी इन्तजाम करें, जिनके जरिये प्रभावी ढंग से वे चुनाव किये जा सकें। तीसरे, लोगों का अपने जीवन पर वास्तविक नियन्त्रण कायम होना जरूरी है, ताकि वे अपनी सभी क्षमताओं का इस्तेमाल करते हुए सही अर्थों में चुनाव कर सकें। इनमें से हर एक पड़ाव से गुजरकर ही हम उन नकली सामाजिक बँटवारों को सीधी चुनौती दे सकते हैं, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के बारे में लोगों की सोच को नियन्त्रित करता है और उसे पूर्वनिर्धारित सामाजिक सीमाओं में जकड़ देता है।

क्या करें?

हाल ही में मैं एक बैठक में शामिल हुआ था। वहाँ एक पर्चा बाँटा गया, जिसने निम्नलिखित दुविधा को सबके सामने रखा-- ऐसा क्यों है कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जीते हुए, जहाँ सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार है, हम ऐसी गैरबराबरी पैदा करनेवाली नीतियों की अनुमति देते हैं, जिनका हमारे स्वास्थ्य पर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है? हम इसकी व्याख्या किस तरह से करें? हमारे पास कृषि विकास की योजनायें हैं, लेकिन वे भुखमरी को बढ़ा रही हैं। हम अस्पताल खोलते हैं और वे नयी बीमारियों के प्रसार-केन्द्र में तब्दील हो जाते हैं। हम बाढ़ नियन्त्रण परियोजनाओं में पैसा लगाते हैं और वे बाढ़ की विभीषिका को बढ़ा देते हैं। आखिर क्या गलत हो रहा है, गड़बड़ी कहाँ है? इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि हमारे अन्दर समझदारी की कमी है या फिर समस्याएँ बहुत जटिल हैं, या फिर हम स्वार्थी हैं या हमारे भीतर ही कोई खोट है या फिर भुखमरी का अन्त करने, लोगों का स्वास्थ्य सुधारने और गैर-बराबरी को दूर करने में मिली असफलता के बाद शायद अब हमें सच्चाई का सामना करने और इस नतीजे पर पहुँचने की जरूरत है कि यह काम हो ही नहीं सकता। या शायद हम कुछ उस तरह की प्रजाति हैं, जो प्रकृति के साथ समुचित रिश्तों में बँधकर एक सहयोगी जीवन गुजारने में असमर्थ है।

हमें इन सभी अनावश्यक निराशावादी नतीजों को अस्वीकार कर देना चाहिए। संघर्षों का इतिहास बहुत पुराना है और यह उपलब्धियों से खाली भी नहीं है। लेकिन संघर्ष करना कठिन काम है। उदाहरण के लिए, अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष करने की जगह लोकतंत्र और कल्याणकारी सरकार का भ्रम पाले रहना ज्यादा आसान है। लेकिन अगर हम इन लोकतांत्रिक संस्थाओं की नीतियों पर गौर करें, तो हम पाते हैं कि लोगों के जीवन में सुधार के घोषित उद्देश्य के बावजूद लगभग हमेशा ही, उनके साथ जुड़ी कुछ शर्तों के चलते वे लड़खड़ा जाती हैं। मसलन, मुझे पक्का यकीन है कि समग्रता में राष्ट्रपति

बिल क्लिण्टन की इच्छा यही होगी कि स्वास्थ्य-बीमा-धारकों की संख्या उन लोगों से ज्यादा हो, जिन्होंने बीमा नहीं करवाया है। लेकिन इससे जुड़ी शर्त यह है कि बीमा उद्योग के मुनाफे की दर कायम रहे। वे शायद यह भी चाहते हों कि दवायें सस्ती हों, बशर्ते दवा उद्योग में मुनाफे की दर ऊँची बनी रहे। अमरीका घोषित रूप से यही चाहता है कि किसानों का जमीन पर मालिकाना हो, लेकिन शर्त यह है कि जमीन बागान मालिकों से छीनी न जाये। कार्यक्रमों की असफलता का मूल कारण अयोग्यता, गैरजानकारी या बुद्धिहीनता नहीं है, बल्कि यह है कि प्रभुत्वशाली लोगों के निहित स्वार्थ उनके क्रियान्वयन में बाधक है। कई बार हम पाते हैं कि कार्यक्रम का एक हिस्सा तो सफलतापूर्वक अमल में लाया गया परन्तु दूसरा छोड़ दिया गया। किसी शहर के अन्दर औद्योगिक जोन स्थापित करने से उस शहर में निवेश तो बढ़ जाता है, लेकिन गरीबी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि फायदों के नीचे की ओर रिसाव की मान्यता (ट्रिकिल डाउन थ्योरी) कोरा भ्रम है। इस औद्योगिक विकास के ठेकेदारों का उद्देश्य अपने निवेश पर पर्याप्त मुनाफा कमाना होता है। अगर यह उद्देश्य पूरा हो जाये, तो दूसरी किसी चीज की उन्हें परवाह नहीं होती।

ये छिपी हुई बाधाएँ, ये व्यवस्थागत अवरोध कैसे काम करते हैं, इसे दूसरे स्थानों पर स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति से भी समझा जा सकता है। अमरीका में स्वास्थ्य सेवायें यहाँ स्थापित बेलगाम पूँजीवाद की पृष्ठभूमि में काम करती हैं। हम इस व्यवस्था में निहित सम्भावनाओं और समस्याओं, दोनों का विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। लेकिन यूरोप में सामाजिक जनवादियों ने ऐतिहासिक तौर पर, एक सर्वथा भिन्न पहुँच को अपनाया। वे गैरबराबरी को एक बाधा के रूप में स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए, वे बेरोजगारी को किसी तेजी से बढ़ते बाजार के अपरिहार्य परिणाम के रूप में लेने के बजाय एक सामाजिक समस्या के तौर पर लेते हैं। उन देशों में नगर-परिषद बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए वित्तीय सहायता देकर एक केन्द्र खोल देगी, जहाँ परामर्शदाता बेरोजगारों को उनके बेरोजगारी-बीमा करवाने के अधिकार और दूसरे फायदेमन्द कार्यक्रमों के बारे में सलाह दिया करेंगे। यहाँ तक कि यह केन्द्र एक सहायता समूह बना सकता है, जहाँ पर इकट्ठे होकर लोग अपने परिवार के लिए पर्याप्त आमदनी न कमा पाने के अपने दुख बाँट सकेंगे और स्थानीय सरकारें अन्य सामाजिक सरोकारों की ओर ध्यान दे पायेंगी। लन्दन में कम उम्र की माताओं के अलगाव को दूर करने के लिए एक कार्यक्रम चलाया जाता है, जिससे वे एक-दूसरे से मिल सकती हैं, अपने सुख-दुख बाँट सकती हैं और एक-दूसरे को सम्बल प्रदान कर सकती हैं। बेशक, इन उपायों में से कोई भी बाजार को चुनौती नहीं देता और न ही मुनाफे की दर को प्रभावित करता है। नगर-परिषद रोजगार पैदा नहीं कर सकती। यहाँ तक कि यूरोप की सामाजिक जनवादी सरकारों द्वारा शुरू किये गये सबसे दूरदर्शी

कार्यक्रम भी पूँजीवादी व्यवस्था को किसी तरह की चुनौती पेश नहीं करते। वे सिर्फ चीजों को ज्यादा समानतापूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए, प्रगतिशील आय कर या उदारतापूर्ण बेरोजगारी बीमा। स्वीडन में परिवहन मजदूरों ने ट्रक ड्राइवरों में बढ़ते हृदयरोग को कम करने के लिए भोजन में सुधार की माँग रखी थी। सड़क किनारे के ढाबों में मिलने वाले भोजन की गुणवत्ता में सुधार के लिए उन्होंने संगठित प्रयास किये और रेस्तराँ व ढाबों के मालिकों से साझेदारी की। इससे उनके भोजन में सुधार हुआ। अन्य स्थानों पर मजदूर संगठनों ने शिफ्ट में काम करने की व्यवस्था में बदलाव, काम के घंटों में कमी और कार्यदशाओं में सुधार के लिए सामूहिक समझौता-वार्ताएँ की। ये ट्रेड यूनियनें इस बात को स्वीकार करती हैं कि स्वास्थ्य के प्रति सरोकार वर्ग-सम्बन्धों का ही एक अन्य पहलू है।

कार्यस्थल पर स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कुछ मामले लगभग मुफ्त होते हैं। समलन, कोई भी मालिक निर्माण स्थल पर मजदूरों को हैलमेट पहनने की हिदायत देने वाला बोर्ड लगाने पर आपत्ति नहीं करेगा। लेकिन जब आप काम को नये सिरे से संगठित करने या खर्चों के बारे में बात करने लगते हैं तो मामला थोड़ा पेचीदा हो जाता है। यदि स्वास्थ्य सुधार के सरकारी कार्यक्रमों पर होने वाले खर्चों को टैक्स लगाकर वसूला जाये, तो पूरी सम्भावना है कि व्यापारी-वर्ग उसका विरोध करेगा और अगर स्वास्थ्य सेवाओं पर होनेवाला कोई नया खर्च मुनाफे की होड़ में हस्तक्षेप प्रतीत हो, तो उनका विरोध राजनीतिक रूप भी ले सकता है। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा अधिनियम के किसी पहलू को रद्द करने की माँग उठ सकती है। यूनियन की माँग के दबाव में यदि किसी निजी पूँजीपति को अपनी जेब से पैसा खर्च करना पड़ जाये, तो वे और भी ज्यादा प्रतिरोध करेंगे; वे कहेंगे कि इससे हम प्रतियोगिता में पिछड़ जायेंगे। यही नहीं, वे उद्योग को बन्द करके कहीं ओर चले जाने की धमकी भी देने लगेंगे। यदि यूनियन की माँग काम को ही बेहतर ढंग से संगठित करने से सम्बन्धित हो, तो प्रबन्धक उसे अपने बुनियादी वर्गीय विशेषाधिकारों का मजदूरों द्वारा अतिक्रमण समझेगा। ऐसी स्थिति में, सिर्फ एक मजबूत और सुसंगठित मजदूर आन्दोलन ही हालात को बदल पाने में समर्थ हो पायेगा।

जब हम स्वास्थ्य नीति को इस दृष्टिकोण से देखते है कि कौन से मुद्दे हैं, जो शासक वर्ग के बुनियादी हितों से सीधे टकराते हैं, कौन से महज सापेक्षिक तौर पर किसी एक वर्ग को अधिक फायदा पहुँचाते हैं और कौन से अपेक्षतया तटस्थ हैं, तो हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि किस तरह के उपाय सम्भव हैं। यह इस धारणा के छिपे झूठ को उजागर करता है कि समाज हर एक व्यक्ति के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहा है। इसलिए हमें स्वास्थ्य सेवाओं की जटिलता को और बेहतर ढंग से समझने की जरूरत है। स्वास्थ्य किसी समाज के श्रमगत माल या श्रमशक्ति के मूल्य का ही एक हिस्सा है और इसीलिए वर्ग-संघर्ष में यह बराबर टकराव का एक मुद्दा बना रहता है।

लेकिन साथ ही स्वास्थ्य एक उपभोक्ता माल भी है-- खासतौर से धनाढ्य वर्ग के लिए, जो अपने स्वास्थ्य में सुधार के लिए कोई भी कीमत अदा करने की हैसियत रखता है। वे पीने के पानी की गुणवत्ता में सुधार के बजाय बोतलबन्द पानी खरीदते हैं, वायु-प्रदुषण को दूर करने के बजाय वे अपने रहने के कमरों में ऑक्सीजन के टैंक लगा लेते हैं। स्वास्थ्य एक ऐसा मुनाफा देने वाला 'माल' भी है, जिसमें अस्पतालों, अस्पताल के प्रबन्धकों और दवा कम्पनियों सहित पूरा स्वास्थ्य उद्योग पूँजी लगाता है। वे स्वास्थ्य सेवाओं को इतने बड़े बाजार में बेचते हैं, जो उसका मूल्य चुका सके। यहाँ तक कि वे ऐसे लोगों को भी स्वास्थ्य सेवाएँ बेचने की कोशिश करते हैं, जिन्हें उनकी जरूरत भी नहीं है। किसी भी अन्य धुआँधार-धन्धे की तरह स्वास्थ्य के क्षेत्र में पूँजी-निवेश करने वाली कम्पनियाँ भी जनसम्पर्क के जरिये लोगों के दिलो-दिमाग को जीतने की कोशिश में मशगूल रहती हैं। वियतनाम युद्ध, उसके पहले और मलाया की आम बगावत के दौरान दक्षिण-पूर्व एशिया में कुछ चिकित्सालय इसी उद्देश्य से कायम किये गये थे। अत्यन्त अभावग्रस्त लोगों की सेवा का व्रत लेकर बहुत सारे डॉक्टरों ने त्याग भरा जीवन अपना लिया। उन्होंने कठोर परिश्रम करके जंगलों में जाकर अस्पताल कायम किये और बहुत कम वेतन पर काम किया। कुछ भोले लोग इस काम को मानव-सेवा की भावना से करते थे, लेकिन अधिक सचेत लोग जानते थे कि उनका उद्देश्य कम्युनिज्म के विस्तार को रोकना है। यह 19वीं सदी के साम्राज्यवाद को न्यायसंगत ठहराने के लिए 'गोरे आदमी का सिरदर्द' नामक पुराने सिद्धान्त का पुनर्जन्म था।

यदि अच्छा स्वास्थ्य किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा अपने जीवन की स्थिति के अनुरूप जरूरी और उपयुक्त कार्रवाइयों को सम्पन्न करने की क्षमता पर निर्भर करता है, तब यह जानना जरूरी हो जाता है कि उसके जीवन की स्थिति का निर्णय कैसे होता है। अपने लिए जरूरी और वांछनीय गतिविधियों का स्वयं निर्णय करने वाले लोग, उन लोगों से एकदम अलग होते हैं, जिनके जीवन का निर्णय दूसरों द्वारा किया जाता है। यह फर्क उस समय एकदम साफ तौर पर दिखायी देता है, जब एक कम्पनी-मालिक अपने कर्मचारियों के पक्षकार के रूप में उनके स्वास्थ्य बीमा के मामलों की सौदेबाजी करता है। कर्मचारियों की जरूरतों से पहले मालिक इस पर गौर करेगा कि उन्हें मिलनेवाली सुविधाओं के पैकेज पर उसे कितना खर्च करना होगा। इस तरह स्वास्थ्य, वर्ग-संघर्ष में हमेशा संघर्ष का मुद्दा बना रहता है। वैज्ञानिक और चिकित्सकीय शोध के मामले में भी यही बात लागू होती है। सभी वैज्ञानिक शोधों में ज्ञान और अज्ञान का निर्धारण उन्हीं लोगों द्वारा किया जाता है, जो शोध-उद्योग के मालिक हैं और ज्ञान के उत्पादन को नियन्त्रित करते हैं। शोध के विषय क्या हों, इसको लेकर होनेवाली बहसों में भी वर्ग-संघर्ष मौजूद रहता है। आज स्वास्थ्य के क्षेत्र में हो रहे शोधों पर दवा कम्पनियों और इलेक्ट्रॉनिक कम्पनियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

आँकड़ों का विश्लेषण कैसे किया जाये, बीमारियों के बारे में किस तरह विचार किया जाये और इन बीमारियों से उठने वाले महामारी-विज्ञान सम्बन्धी, सामाजिक और ऐतिहासिक प्रश्नों पर कितने व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करने की जरूरत है-- बौद्धिक हलकों में इन सवालों को लेकर चिन्तायें मौजूद हैं। ये सभी प्रश्न स्वास्थ्य सेवाओं और स्वास्थ्य-नीति के मुद्दे हैं, लेकिन ये सभी मुद्दे उस सम्पूर्ण व्यवस्था के अंग हैं, जो भविष्य में हमारे हमले का निशाना बनेगी। पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं की तरह ही हमें स्वास्थ्य को भी एक व्यापक मुद्दे के रूप में लेना होगा; क्योंकि ये वर्ग-संघर्ष के आयाम हैं, वर्ग-संघर्ष का विकल्प नहीं।

गार्गी प्रकाशन की अन्य पुस्तकें

नयी पुस्तकें

करतार सिंह सराभा	वरियाम सिंह सन्धू	20
गदरी बाबा कौन थे?	वरियाम सिंह सन्धू	40
आजादी या मौत	वेद प्रकाश 'वटुक'	130
लातिन अमरीका के रिसते जख्म	ऐदुआर्दो गालेआनो	200
अन्तहीन संकट	जॉन बेलामी फोस्टर/रॉबर्ट मैक्केज्नी	150
इतिहास : जैसे घटित हुआ (मंथली रिव्यू के (1949-1998) चुने हुए लेख)		150
हो ची मिन्ह : एक क्रान्तिकारी का जीवन	सूफी अमरजीत	100
लू शुन : एक परिचय	फेंग शुएफेंग	20
समाजवाद का ककहरा	लियो ह्यूबरमन	45
डॉक्टर नार्मन बेथ्युन की अमर कहानी	सिडनी गार्डन, टेड एलन	150
एक विराट जुआघर (वित्तीय पूँजी के संकट पर फिदेल कास्त्रो के विचार)		30
पहला अध्यापक	चिंगिज आइत्मातोव	30
क्यूबा क्रान्ति के पचास वर्ष		30
वित्तीय महासंकट	फ्रेड मैक्डॉफ, जॉन बेलामी फोस्टर	80
विश्वव्यापी कृषि संकट		50
विश्व खाद्य संकट		50

असमाधेय संकट	पॉल एम स्वीजी, हैरी मैक्डॉफ	50
आधुनिक मानव का अलगाव	फ्रित्ज पापेनहाइम	80
विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिया (संकलन)		35
तस्वीर	निकोलाई गोगोल	20
इटली की कहानियाँ	मक्सिम गोर्की	50
मुक्तिमार्ग	हावर्ड फास्ट	80
पाप और विज्ञान	डाइसन कार्टर	50
फिदेल एक निजी शब्द चित्र	गेब्रियल गार्सिया मार्ख्वेज	10
एक और ग्यारह सितम्बर	फिदेल कास्त्रो	20
इतिहास मुझे सही साबित करेगा	फिदेल कास्त्रो	25
मनुष्य की भौतिक सम्पदाएँ	लियो ह्यूबरमन	70
नौजवानों के नाम भगत सिंह का संदेश		15
मकड़ा और मक्खी	विलहम लिब्नेख्त	02
प्रेमचंद की तीन कहानियाँ	प्रेमचंद	10
क्वाण्टम के सौ साल	रवि सिन्हा	40
क्या करें? (संकलन)		15
जनता के गीत		15
सुल्ताना का सपना	रुकय्या सखावत हुसैन	10